ब्रह्मचर्य-साधन

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव
(सुधा-संपादक)

गंगा-पुस्तकमाला का १२७वाँ पुष्प

ब्रह्मचर्य-साधन

लेखक
आचार्य चतुरसेन शास्त्री
[हृदय की परख, हृदय की प्यास, उत्सर्ग, अक्षत,
गोलसभा और आरोग्य-शास्त्र
आदि के रचयिता]

"The seed is the life. Give not thy strength to women." (A Mother)

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

द्वितीयावृत्ति

सजिल्द १)] सं० १९९० वि० [सादी ॥)



प्रकाशक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ



प्रथमावृत्ति सं० १९९०

द्वितीयावृत्ति सं० १९९०



मुद्रक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस

लखनऊ







मूल-मंत्र

कुरुक्षेत्र के मैदान में जिस देश ने योरप, अमेरिका और एशिया तथा उत्तर ध्रुव तक की जातियों को अपनी आज्ञा के अधीन ला खड़ा किया था, उस देश के ३० करोड़ मनुष्य २ लाख आदमियों के गुलाम बने रहना क्यों 'अमन' समझते हैं ?

जहाँ भगवती गार्गी आजन्म कुमारी और सर्वथा बिना पर्दा किए सहस्रों विद्वानों की सभाओं में ब्रह्मवाद पर विजयी शास्त्रार्थ करती थीं, वहाँ आज करोड़ों ललनाएँ घर में पशु और बाहर पार्सल की भाँति क्यों रक्खी जाती हैं ? जहाँ माता का पद गुरु से भी प्रथम आचार्य-श्रेणी में माना जाता था, वहाँ आज ग्यारह-ग्यारह वर्ष की बालिकाएँ क्यों माता बनी दिखाई पड़ती हैं ? जिस देश के युवक सिंहों की छातियों को फाड़ते थे, आज उनके स्वर, स्वरूप, वेश और स्वभाव में क्यों ज़नानापन आ गया है ? जिस देश के धर्मशास्त्र में व्यभिचारी को हत्यारे से भी अधिक गंभीर दंड-विधान है, वहाँ के एक ही नगर में १२ हज़ार वेश्याएँ क्या खाकर पेट भरती हैं ?

इसका एक ही सच्चा और गंभीर उत्तर है। वह है—

ब्रह्मचर्य का नाश

और यदि कभी भारत स्वाधीन होगा, भारत की ललनाएँ कभी धर्मांगिनी बन सकेंगी, भारत के बच्चे यदि कभी सुपुत्र कहला सकेंगे, तो एक ही कारण से। और वह है—'ब्रह्मचर्य-साधन।' सिद्ध पुरुषों ने कहा—

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।"

लेखक

वक्तव्य

आचार्य श्रीचतुरसेनजी शास्त्री हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक हैं। आपकी भाषा साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है। जनता में भी आपकी कृतियों का अत्यंत आदर है। हमें हर्ष है, इस पतित देश की शिक्षा के लिये लिखी हुई आपकी 'ब्रह्मचर्य-साधन' नाम की पुस्तिका का पहला संस्करण छ मास में समाप्त हो गया, यह दूसरा पाठकों के सामने प्रस्तुत है। शास्त्रीजी की पुस्तकों से भावों के साथ-साथ भाषा का भी मार्जन हो जाता है। पुस्तक के दूसरे संस्करण पर हम विद्वान् लेखक तथा विज्ञ पाठकों को बधाई देते हैं।

प्रकाशक

विषय-सूची

पहला अध्याय

ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं ?

'ब्रह्मचर्य' अत्यंत प्राचीन भारतीय संस्कृति का शब्द है, और यदि हम यह कहें कि संसार की किसी भी भाषा में इस शब्द का पर्यायवाची शब्द नहीं है, तो अत्युक्ति नहीं।

'ब्रह्मचर्य' उस अति प्राचीन काल के जीवन का एक व्यावहारिक शब्द है, जब 'ब्रह्मचर्य' भारतीयों की दिनचर्या में उतना ही महत्त्व रखता था, जितना आज 'व्यवसाय' रखता है। यह संस्कृत-भाषा का शब्द है, और इसकी व्युत्पत्ति है—"ब्रह्मणि चरणमिति ब्रह्मचर्यम्" अर्थात् ब्रह्म में आचरण करना ब्रह्मचर्य कहाता है। प्राचीन संस्कृत-साहित्य में ब्रह्म शब्द के तीन अर्थ होते हैं*—वेद, वीर्य और परमात्मा। चरण शब्द के अर्थ हैं—"आचरण, चिंतन और रक्षण।"

---

* "तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमश्नुते। (कठोपनिषद्)
"तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापति।" (यजुर्वेद)
"प्रज्ञानं वै ब्रह्म।" (ऐतरेय उपनिषद्)
"यत्परब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत्।" (कैवल्योपनिषद्)
"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।" (वेदांत)
"ब्रह्माभ्यासेन चाजस्रमनन्तसुखमश्नुते।" (मनुः)

इसलिये आज ब्रह्मचर्य से साधारणतया जो यह अर्थ लगाया जाता है कि ब्रह्मचर्य वीर्य-रक्षा को ही कहते हैं, वह भूल है। वास्तव में जब तक उपर्युक्त तीनों अर्थों के समष्टि रूप आचरण न होगा, तब तक 'ब्रह्मचर्य' की कदापि सिद्धि नहीं हो सकती।

क्योंकि वीर्य, जो आजकल 'ब्रह्मचर्य' का खास लक्ष्य है, शरीर-धातु है, परंतु इसका संबंध 'काम-वासना' से है। यह काम-वासना मन से उत्पन्न हुई है, और कामदेव को 'मनोज' कहते भी हैं। अतः इस 'वीर्य-पात' का संबंध खासकर मानसिक वृत्तियों से है। यों तो प्रत्येक इच्छा मन से ही उत्पन्न होती है; परंतु उन सबमें और कामेच्छा में बड़ा अंतर है। दूसरी इच्छाएँ बिना प्रथम सूक्ष्म अनुभव के नहीं उत्पन्न होतीं, परंतु कामेच्छा अपने नियत काल पर स्वयं ही हो जाती है। जब शरीर के अंग परिपूर्ण हो जाते हैं, तब यह इच्छा भी उत्पन्न हो जाती है, और वह सभी इच्छाओं से बलवती और अद्भुत होती है। संसार के इतिहास में कामेच्छा की शक्ति के बड़े-बड़े महत्त्व-पूर्ण उदाहरण हैं।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांऽसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ;
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।
(कठोपनिषद्)

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ;
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम्। (मनुः)

साम्राज्यों के विध्वंस यदि किसी इंद्रिय-इच्छा ने किए हैं, तो इसी ने। इसलिये काम यद्यपि ऐंद्रिक विषय है, पर इसे मानसिक विषयों में गिनकर काम, क्रोध, लोभ और मोह इन चार शत्रुओं में गिना है, वह भी सर्वप्रथम। क्रोध किसी ख़ास इंद्रिय का विषय नहीं, लोभ और मोह भी नहीं, परंतु काम एक इंद्रिय का विषय है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वास्तव में काम-वासना ऐंद्रिक विषय होने पर भी उसका मन से अति घनिष्ठ संबंध है, इसीलिये जब तक मानसिक प्रवृत्तियों पर पूरा क़ाबू न पा लिया जाय, ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन, जहाँ तक उसका अर्थ वीर्य-रक्षा है, करना असंभव है। इसलिये प्राचीन विद्वानों ने ब्रह्म शब्द को तीन भागों में विभक्त किया। एक वीर्य, दूसरा वेद अर्थात् ज्ञान, तीसरा परमात्मा, निर्गुण चैतन्य सत्ता। इन तीनो शक्तियों को समान भाव से साधना और चिंतना करने ही से वीर्य-रक्षा एवं ब्रह्मचर्य-साधना हो सकती है, अन्यथा नहीं।

इन तीनो विषयों को हम ज़रा और भी विस्तार से वर्णन किया चाहते हैं—

१—वीर्य-रक्षण।

२—वेद-चिंतन।

३—परमात्मा-आचरण।

वीर्य-रक्षण के अर्थों में ब्रह्मचर्य की व्याख्या होनी चाहिए—

'संयम' अर्थात् संयम से रहने पर ही वास्तव में वीर्य-रक्षा हो सकती है।

संयम की यहाँ हम थोड़ी व्याख्या करेंगे। मनु कहते हैं—

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ;
संयमे यत्नमातिष्ठेत् विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्।

अर्थात् जैसे होशियार कोचवान मज़बूती से लगाम पकड़कर घोड़ों को वश में रखता है, वैसे ही मन और आत्मा को इंद्रियों के विषयों में विचरण करने से यत्न से संयम में रक्खे।

आगे मनु कहते हैं—

यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ;
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम्।

अर्थात् जो मनुष्य वाणी और मन से शुद्ध और सुरक्षित रहता है, वही सब ज्ञानों के फलों को प्राप्त होता है।

अब विचार करने का विषय यह है कि यह संयम किस प्रकार सिद्ध किया जाय। प्राचीन विद्वानों का मत है कि यम और नियम का पालन करने ही से संयम की सिद्धि होती है। यम पाँच प्रकार के हैं—

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।
शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

(योग-साधन-पाद)

१ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ ब्रह्मचर्य और ५ अपरिग्रह। ये पाँच यम कहाते हैं। तथा

१ शौच, २ संतोष, ३ तप, ४ स्वाध्याय और ५ ईश्वर-प्रणिधान। ये पाँच नियम कहाते हैं।

इन दसों की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है—

अहिंसा—मन, वचन, कर्म से किसी प्राणी को कभी न सताना।

सत्य—जिस बात को जैसा जाना है, वैसा ही मानना और कहना।

अस्तेय—पराई वस्तु, स्त्री आदि पर स्वार्थ-पूर्ण और अन्याय-दृष्टि न डालना।

ब्रह्मचर्य—स्त्री का स्मरण, उनकी चर्चा, उनके साथ हँसी-मज़ाक करना, उन्हें घूरना, एकांत में बातचीत करना, उन्हें वश में करने का संकल्प करना, संकल्प के अनुसार चेष्टा करना और संभोग करना, इन ८ प्रकार के मैथुनों से अपने को बचाना।

अपरिग्रह—पराई कृपा के आसरे न होना, दूसरे का दान न लेना, ये ५ यम हुए, और

शौच—शरीर को शुद्ध जल और वस्त्रों से, मन को शुद्ध विचारों से और आत्मा को आत्म-चिंतन से शुद्ध रखना।

संतोष—हेतु में ईर्षा रखना, फल में नहीं।

तप—कष्ट सहने पर भी धर्म और नीति का त्याग न करना।

स्वाध्याय—सदा सच्छास्त्रों को पढ़ते-पढ़ाते, सुनते-सुनाते रहना।

ईश्वर-प्रणिधान—ईश्वर में अटल भक्ति और उसका चिंतन ये ही यम और नियम हैं। मनु कहते हैं—

यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः ;
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्।

अर्थात् बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह केवल नियमों का सेवन न करे, यम और नियम दोनों का सेवन करे। जो कोई भी यम के पालन को छोड़कर केवल नियम का सेवन करेगा, वह मनुष्य पतित होगा।

इसलिये यम और नियम पालन करने ही से संयम का यथार्थ अभ्यास हो सकता है, और संयम ही से वास्तव में ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य-रक्षण होना संभव है, और रीति से नहीं।

वीर्य-रक्षण के बाद ब्रह्मचर्य का अर्थ होता है वेदाध्ययन। वेद से अभिप्राय ज्ञान-प्राप्ति अथवा अध्ययन से है। प्राचीन काल में वेदों ही का महत्त्व सर्वोपरि था, और उसका पठन-पाठन भारतवर्ष के निवासी यत्न से किया करते थे। उसके साथ अन्य धर्म और विज्ञान का साहित्य भी लोग पढ़ा करते थे। क्योंकि स्वाध्याय अर्थात् अध्ययन करने से इंद्रियाँ स्थिर होती हैं, मन अपने विषयों पर अनासक्त होता है, और स्वभाव में गंभीरता एवं विचारों में प्रौढ़ता उत्पन्न होती है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है—

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च।
तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजतश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च।

अर्थात् यथार्थ आचरण से स्वाध्याय करे (जो कुछ पढ़े-पढ़ावे, समझे वैसा ही अपना आचरण बनावे) सत्याचार से स्वाध्याय करे (केवल निर्दोष विद्याओं को ही पढ़े-पढ़ावे)। तप से स्वाध्याय करे (तपस्वी अर्थात् धर्मानुष्ठान करते हुए धर्म-ग्रंथों को पढ़े-पढ़ावे)। दम से स्वाध्याय करे (बाह्य इंद्रियों को बुरे आचरणों से रोककर पढ़े-पढ़ावे)। शम से स्वाध्याय करे (मन की वृत्तियों को सब प्रकार के दोषों से हटाकर पढ़े-पढ़ावे)। अग्नि से स्वाध्याय करे। अग्निहोत्र से स्वाध्याय किया करे (अग्निहोत्र—नित्यकर्म करता हुआ स्वाध्याय करे)। अतिथि से स्वाध्याय करे (अतिथि का स्वागत-सत्कार करते हुए पढ़े-पढ़ावे)। मनुष्य से स्वाध्याय करे (मनुष्यों से सद् व्यवहार करते हुए पढ़े-पढ़ावे)। प्रजा से स्वाध्याय करे (संतान और राज्य एवं अधीनों से यथायोग्य व्यवहार करता हुआ स्वाध्याय करे) प्रजनन करता हुआ स्वाध्याय करे (वीर्य-रक्षा और वीर्य-वृद्धि करता हुआ पढ़े) प्रजाति करते

हुए स्वाध्याय करे (संतान और शिष्यों को योग्य बनाते हुए पढ़े)।

हम यह कह सकते हैं कि अध्ययन करने के उपर्युक्त नियमों का मुक़ाबला करनेवाले नियम हमें संसार-भर की सभ्यता में नहीं मिल सकते। इन नियमों के निर्माण करनेवालों ने यह निश्चय कर लिया था कि अध्ययन से ज्ञान-वृद्धि होती है, और ज्ञान का यथार्थ लाभ उसकी प्राप्ति नहीं, प्रत्युत उस पर अमल करना है और ज्ञान पर व्यावहारिक जीवन बनाने का ही वह उपर्युक्त विधान बताया गया है।

अब रही तीसरी बात—परमात्म-चिंतन।

जब यम-नियमों का साधन हो गया, और संयम का अभ्यास हो गया, स्वाध्याय और सद्ग्रंथों का निरंतर मनन होने से बुद्धि और मन निर्मल है, तब चिंतन का विषय क्या हो सकता है? क्या ऐसा पुरुष काम-वासना की चिंता करेगा? क्या वह कांचन-कांचनी का चिंतन करेगा? क्या जगत् की कोई भी संपदा उसे प्रलोभन में डाल सकेगी? यह संभव ही नहीं है। उसकी चिंतना का विषय होगा परमात्म-चिंतन, जो वास्तव में विशुद्ध और चरम सीमा के चिंतन का विषय होना चाहिए।

अथर्ववेद में लिखा है—

ब्रह्मभ्यावर्तेतन्मे यच्छतु द्रविणं तन्मे ब्राह्मणवर्चसम्।

अर्थात् मैंने ब्रह्म की उपासना की। उसने मुझे सामर्थ्य दी, और ब्रह्मवर्चस् दिया। ब्रह्मवर्चस् वही महत्त्व-पूर्ण वस्तु है,

जिसकी जिज्ञासा बड़े-बड़े ऋषियों ने की है। अथर्ववेद इसकी व्याख्या में लिखता है—

सूर्यस्यावृतमन्वावर्तें दक्षिणामन्वावर्तें ;
सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ।

अर्थात् हम सूर्य के समान शरीर को प्रकाशित करनेवाले ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करते हैं, वह हमें मनोबल दे, वह हमें ब्रह्मतेज प्रदान करे।

वास्तव में ब्रह्मवर्चस् 'आत्मज्ञान' का नाम है। छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है—

तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दते ;
तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषा ँ सर्वलोकस्य कामचारो भवति ।

अर्थात् इस प्रकार ब्रह्मचर्य से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। वह ब्रह्मचारी सभी लोकों में यथेच्छ भ्रमण कर सकता है।

यह ब्रह्मलोक वास्तव में मन की वह अवस्था है, जब आत्मज्ञान होने पर मन ब्रह्म में लीन हो जाता है। फिर उसे किसी बात की चाहना नहीं रहती।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य मनुष्य को संसार में सबसे उच्च बना देता है। मनु कहते हैं—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ;
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ।

स्वाध्याय से, ब्रह्मचर्य से, सत्यभाषण से, वेदोक्त तीन विद्या—कर्म, उपासना और ज्ञान—से, उत्तम संतानोत्पत्ति से,

यज्ञ से यह शरीर ब्राह्मीय ब्रह्म-युक्त अर्थात् वीर्य, ज्ञान और आत्मा से युक्त किया जा सकता है।

पाठकों के ज्ञानार्थ हम उस विधि की ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हैं, जो प्रत्येक आर्य-परिवार अपनी संतान को योग्य आयु होने पर उन्हें ब्रह्मचर्य-व्रत की दीक्षा देने के समय किया करता था।

ब्राह्मण-पुत्र ८वें वर्ष, क्षत्रिय-पुत्र ११वें वर्ष और वैश्य-पुत्र १२वें वर्ष में 'ब्रह्मचर्य'-व्रत ग्रहण करते थे। खास-खास अवस्थाओं में यह समय क्रमशः १६, २२, २४ वर्ष हो जाता था *।

मनु का वचन है—

> ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे;
> राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे।

यदि कोई यह चाहे कि मेरा पुत्र ब्रह्मवर्चस्वी हो, तो उसे वर्ण-क्रम से ५-६ और ८वें वर्ष में ही बच्चे को ब्रह्मचर्य-व्रत की दीक्षा देनी उचित है।

ब्रह्मचर्य-व्रत की दीक्षा देने की परिपाटी यह थी—

---

* अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् १, गर्भाष्टमे वा २, एकादशे क्षत्रियम् ३, द्वादशे वैश्यम् ४, आषोडशाद् ब्राह्मणस्यानतीतः कालः ५, आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य; आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य, अत ऊर्ध्वं पतित-सावित्रिका भवन्ति ६।

(आश्वलायन गृह्यसूत्र)

प्रथम बालक को तीन दिन तक व्रत या उपवास कराया जाता था। इस व्रत में ब्राह्मण-पुत्र को दूध, क्षत्रिय-पुत्र को दलिया और वैश्य-पुत्र को सिखरना दिया जाता था *।

इसके बाद पिता यज्ञ करके संतान को आचार्य के सुपुर्द करता था। आचार्य उसे यज्ञोपवीत प्रदान करता और उसे गुरु-मंत्र देता था, तथा उससे ये प्रतिज्ञाएँ कराता था—

१—"ब्रह्मचार्यसि"—तू ब्रह्मचारी है।

२—"अपोऽशान"—शुद्ध जल पिया कर।

३—"कर्म कुरु"—काम किया कर, (खेल-कूद त्याग)

४—"दिवा मा स्वाप्सी"—दिन में मत सोया कर।

५—"आचार्याधीनो वेदमधीष्व"—आचार्य से वेद पढ़ा कर।

६—"द्वादशवर्षाणि प्रति वेदं ब्रह्मचर्यं गृहाण वा ब्रह्मचर्यं चर।"—प्रत्येक वेद के लिये १२ वर्ष ब्रह्मचर्य-व्रत पालन कर।

७—"क्रोधानृते वर्जय"—क्रोध और झूठ त्याग दे।

८—"मैथुनं वर्जय"—मैथुन त्याग दे।

९—"उपरिशय्यां वर्जय"—पलंग पर मत सोना।

१०—"कौशीलगन्धाञ्जनानि वर्जय"—गाना, बजाना, नाचना तथा सुगंध और अंजन आदि न लगाना।

११—"अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं निन्दां लोभ-

* पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षव्रतो वैश्यः।
(शतपथ-ब्राह्मण)

मोहभयशोकान् वर्जय।"—अत्यंत स्नान, भोजन, निद्रा-जागरण, निंदा, लोभ, मोह, भय, शोक त्याग दे।

१२—"प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधावनं स्नानसन्ध्योपासनेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना - योगाभ्यासान्नित्यमाचर।"—प्रतिदिन रात्रि के अंतिम प्रहर में उठ, और नित्य-कर्म करके दंतधावन, स्नान, संध्या, उपासना और योगाभ्यास नित्य किया कर।

१३—"क्षुरकृत्यं वर्जय"—हजामत मत बनवा।

१४—"मांसरूक्षाहारं मद्यादिपानं वर्जय"—मांस, रूक्ष भोजन, शराब आदि से दूर रह।

१५—"गवाश्वहस्त्युष्ट्रादियानं वर्जय"—सब प्रकार की सवारी त्याग दे।

१६—"अन्तर्ग्रामनिवासोपानच्छत्रधारणं वर्जय"—गाँव में रहना और जूता-छाता धारण करना त्याग दे।

१७—"अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय वीर्यं शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेताः सततं भव।"—हाथ से गुप्तेंद्रिय न छू। न वीर्य-स्खलन कर। वीर्य को शरीर में रक्षित कर और ऊर्ध्वरेता बन।

१८—"तैलाभ्यंगमर्दनात्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व।"—तेल आदि की मालिश, अधिक खटाई, क्षार, रेचन आदि त्याग दे।

१९—"नित्यं युक्ताहारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्न-

वान् भव।"—सदा युक्ताहार-विहार कर, विद्योपार्जन में यत्न कर।

२०—"सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव"—सुशील, मितभाषी और सभ्य बन।

२१—"मेखलादंडधारणभैक्ष्यचर्यसमिदाधानोदकस्पर्शनाचार्यप्रियाचरणप्रातःसायमभिवादनविद्यासंचयजितेन्द्रियत्वादीन्येते नित्य धर्माः।"—मेखला-दंड-धारण, भिक्षाचरण, अग्निहोत्र, स्नान, संध्या, आचार्य का प्रिय आचरण, आचार्य को प्रणाम, ये तेरे नित्य कर्म हैं।

इस उपदेश के बाद वह बालक (चाहे राजा का हो, चाहे रंक का) गुरु-गृह में जाकर २४, ३२, ४८ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य का कठिन व्रत पालन करके वीर्य, विद्या और आत्मज्ञान की प्राप्ति किया करता था, और तब उसे गृहस्थ होने का विधान था। वहाँ भी वह ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करता था।

दूसरा अध्याय

ब्रह्मचर्य का महत्त्व

अथर्ववेद में लिखा है—

> ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ;
>
> इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्।

अर्थात् ब्रह्मचर्य और तप से देवताओं ने मृत्यु को जीता। इंद्र ने ब्रह्मचर्य के बल से ही देवताओं पर प्रभुत्व क़ायम किया।

मृत्यु का जीत लेना संसार की एक बड़ी वस्तु है। और हम कह सकते हैं कि मृत्यु को जीत लेना ब्रह्मचर्य को छोड़कर और किसी भाँति संभव ही नहीं है।

आज हम लक्षावधि प्राणियों को अकाल में मृत्यु-मुख में जाते देखते हैं। हम सोचते हैं, इस सुंदर हरी-भरी दुनिया को इस प्रकार त्याग देना कैसा दुर्भाग्य है। क्या जीवन इतना अपदार्थ है कि उसे यों ही छोड़ दिया जाय। मनुष्य अपने जीवन के लिये क्या-क्या संग्रह करता है, क्या-क्या सुख और उपभोग वह प्राप्त करता है। वह स्त्री से, पुत्र से, मित्रों से कुटुंबी जनों से विविध संबंध स्थापित करता है, सो क्या इसीलिये कि वह चाहे जब मर जाय ?

जिन संपादाओं को वह अपने हाथ का मैल समझता है, और

चाहे जब उन्हें उपार्जन कर सकता है, वे संपदाएँ तो सहस्रों वर्ष तक चिरस्थायी रहती हैं, परंतु वह पुरुष, जो इन सबका स्वामी है, अपने क्षण-भंगुर जीवन को लिए फिरता है।

हम इस बात का प्रबल प्रमाण रखते हैं कि प्राचीन काल में भारत में अति दीर्घजीवी पुरुष रहते थे, और उनकी सैकड़ों वर्ष की आयु होती थी। आज यदि हम अपने से एक पीढ़ी पीछे देखें, तो हम सहज ही यह कल्पना कर सकते हैं कि किस प्रकार नई पीढ़ी का जीवन ह्रास होता चला जा रहा है, और इसमें कोई संदेह नहीं कि आयु की अवधि कम होने का मूल-कारण ब्रह्मचर्य का नाश ही है। यह बात सब कोई जानता है कि संसार में रहकर मनुष्य को बेअंदाज़ शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल ख़र्च करना पड़ता है। इस बल का संचय ब्रह्मचर्य के द्वारा ही किया जा सकता है। यदि ब्रह्मचर्य द्वारा यह बल हम संचय न करेंगे, तो ख़र्च कहाँ से करेंगे? हम आज रोगी, दरिद्र, जर्जर, संतान-रहित और अल्पायु क्यों हैं? ब्रह्मचर्य का पालन न करने से, कच्ची आयु में वीर्य-नाश करने से। दरिद्रता का मूल-कारण यही है कि जिस उम्र में ब्रह्मचर्य द्वारा शक्ति-संचय करना उचित था, उस उम्र में बाल-विवाह कर, गृहस्थ बन शक्ति-क्षय करना प्रारंभ कर दिया। आज प्रत्येक पुरुष का शरीर, मन और आत्मा उसके जीवन के बोझ से दबा हुआ है, इसका कारण शक्ति का अभाव है।

ब्रह्मचारी बनकर विद्या पढ़ने से आत्मिक बल बढ़ता है। आत्मा बलिष्ठ होती है। और मनोवृत्ति गंदी नहीं होने पाती। विशुद्ध मनोवृत्ति होने से शारीरिक बल, जो कुचेष्टाओं से खंडित होता है, रक्षित रहता है। इस सबका समुदाय ही समाज है। जब हम सबका शरीर और आत्मा बली होता है, तो समाज भी बली होता है। प्राचीन वीर ब्रह्मचर्य का बल जगत् को दिखा गए हैं।

यदि सचमुच देखा जाय, तो हमारी आयु, आरोग्यता, सौंदर्य, ऐश्वर्य और सारी भावी कामनाओं का यही मूल है। एकमात्र इसी के अनुष्ठान से हमारी सारी धार्मिक और नैतिक मनोकामनाएँ पूरी हो सकती हैं। ब्रह्मचारी ही आदर्श संतान पैदा करके उन्हें योग्य पुत्र बना सकता है। उत्तम संतान पैदा करनेवालों को ब्रह्मचारी होना परमावश्यक है। ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन करने पर ही हमें विद्या-प्राप्ति का सुबीता रहता है। यह विद्या वास्तव में प्राचीन विद्वानों के तजुर्बे हैं। उन्हें देखकर ही हम यह जान सकते हैं कि इस अगम्य संसार की गति कैसी है, और किस काम को किस प्रकार करने से क्या हानि-लाभ होगा। ईश्वर ने माता, पिता, पुत्र व पड़ोसी और देश का व्यवहार, अपना धर्म-कृत्य और जीवन-धर्म, इन सबको जानने ही के लिये ब्रह्मचर्य की सृष्टि की है। हमारे सामने जीवन का, सुख-दुःख का, हानि-लाभ का, साहस-वीरता का, परोपकार का जो वृहत् भवन खड़ा हो सकता है, ब्रह्मचर्य ही उसकी नींव

है। यह जो हमारे सामने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की चतुर्वर्ग-प्राप्ति का महान् वृक्ष है, ब्रह्मचर्य ही उसका मूल है। अगर हम चाहते हैं कि हमारा भवन दृढ़ बने, हमारा उद्देश्य-वृक्ष बड़े-बड़े आँधी के झोंकों से भी न उखड़े, तो हमें चाहिए कि पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करके कृतकृत्य हो जायँ।

मनुष्य संसार का विशिष्ट प्राणी है। उसकी उन्नति की सीमा नहीं। वह चाहे, तो जगत् को हिला सकता है; पर इसके लिये गहन मेधा, बुद्धि और प्रबल बाहु-बल का सहारा चाहिए। प्राचीन महापुरुष भीष्म, भीम, कृष्ण, राम आदि महानुभाव तथा शुक, व्यास, कपिल आदि महापुरुष इसी के बल पर अपना जीवन अमर बना गए हैं।

छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है—

एकतश्चतुरो वेदाः ब्रह्मचर्यं तथैकतः।

अर्थात् चारो वेद एक ओर हैं, और अकेला ब्रह्मचर्य एक ओर। प्रश्नोपनिषद् में लिखा है—

तेषामेवैष स्वर्गलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्।

स्वर्गलोक उन्हीं लोगों के लिये है, जो तपस्वी, ब्रह्मचारी और सत्यनिष्ठ हैं।

महाभारत के शांतिपर्व में भीष्मपितामह ब्रह्मचर्य की प्रशंसा में कहते हैं—

ब्रह्मचर्यस्य सुगुणं शृणु त्वञ्च सुधाधिया;
आजन्म मरणाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह।

न तस्य किञ्चदप्राप्यमिति विद्धि नराधिप ;
बहुकोटि ऋषीणाञ्च ब्रह्मलोके वसन्त्युत ।
सत्ये रतानां सततं दांतानामूर्ध्वरेतसाम् ;
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् ! सर्वपापान्युपासितम् ।

हे बुद्धिमानो, ब्रह्मचर्य के उत्तम गुणों को सुनो। जो कोई भी आजन्म ब्रह्मचारी रहेगा, उसे कभी दुःख न होगा। हे राजन्, उसे कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं। वह अनंत काल तक ब्रह्मलोक में ऋषिगणों के बीच रह सकता है।

जो सत्य में रत हैं, ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हैं, हे राजन्, ब्रह्मचर्य उनके समस्त पापों को नाश कर देता है।

सुश्रुताचार्य कहते हैं—

मृत्युव्याधिजरानाशी पीयूषं परमौषधम् ;
ब्रह्मचर्यं महद्यत्नं सत्यमेव वदाम्यहम् ।
शान्ति कान्ति स्मृतिं ज्ञानमारोग्यञ्चापिसन्ततिम् ;
यइच्छति महद्धर्मं ब्रह्मचर्यं चरेदिह ।

मृत्यु, व्याधि और जरा को नाश करनेवाला, अमृत के समान महौषध ब्रह्मचर्य है, यह मैंने सत्य कहा। शांति, कांति, स्मृति, ज्ञान और आरोग्य तथा संतान, इनकी जो पुरुष इच्छा करता है, वह ब्रह्मचर्य का पालन करे।

गीता में भी लिखा है—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ;
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।

देव, गुरु, द्विज और विद्वान् की पूजा, पवित्रता और सरलता तथा ब्रह्मचर्य और अहिंसा को शारीरिक तप कहते हैं।

तंत्र-शास्त्रों में लिखा है—

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्।

अर्थात् तप को तप नहीं कहा, ब्रह्मचर्य ही तप है।

उपनिषद् में एक स्थल पर लिखा है—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यक्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्,
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।

सत्य से, तप से, पूर्ण ज्ञान से और अविचल ब्रह्मचर्य से आत्मा का लाभ हो सकता है। वह अंतःकरण में ज्योतिर्मय और निर्मल-रूप से विराजमान है। जो लोग सिद्ध और निष्पाप हैं, वे ही उसका दर्शन कर सकते हैं।

छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है—

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव। तद् ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दन्तेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव। तद् ब्रह्मचर्येण ह्येवेष्ट्वाऽऽत्मानमनुविन्दन्ते।

जिसे यज्ञ कहते हैं, वह 'ब्रह्मचर्य' ही है। उस ब्रह्मचर्य का जाननेवाला ब्रह्म को प्राप्त होता है। जिसे इष्ट कहते हैं, वह ब्रह्मचर्य ही है। उस ब्रह्मचर्य द्वारा यजन करके ही पुरुष ब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है।

पाठकों का स्मरण रखना चाहिए कि अथर्ववेद वास्तव में आयुर्वेद का बीज रखता है। आयुर्ज्ञान-संबंधी बहुत-सी महत्त्व-पूर्ण बातें अथर्ववेद में प्रदान की गई हैं। इस अथर्ववेद में ब्रह्मचर्य पर एक पृथक् सूक्त दिया है, जिसे हम पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत करते हैं—

ब्रह्मचारी चरति रोदसी उभे तस्मिन्देवाः संमनसो भवन्ति। सदा-धार पृथ्वीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति।

ब्रह्मचारी पृथ्वी और आकाश में विचरण करता है। उसमें देवों का वास होता है। वह पृथ्वी और आकाश को धारण करता है। वह आचार्य को तप से पूर्ण करता है।

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः;
पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः;
षट्सहस्राः सर्वान्स देवांस्तपसा पिपर्ति।

ब्रह्मचारी का पितर, देव, देवेतर अनुसरण करते हैं। गंधर्व इसका अनुसरण करते हैं। वह अपने तप से ३३, ३००, और ६ हजार देवों को पूर्ण करता है।

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः;
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।

उपनयन देनेवाला आचार्य ब्रह्मचारी को प्राप्त करता है। उसे तीन रात्रि तक अपने उदर में रखता है, तब देवता उसे देखने आते हैं।

इयं समित्पृथिवी द्यौर्द्वितीये तान्तरिक्षं समिधा पृणाति ;
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ।

यह पृथ्वी प्रथम समिधा है। दूसरी समिधा आकाश है। वह ब्रह्मचारी समिधा, मेखला, श्रम और तप से लोक को पूर्ण करता है।

पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदातिष्ठत् ;
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्मज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ।

ब्रह्मचारी प्रथम ब्रह्म होता है । फिर-फिर तप करता है। उससे ब्राह्मण और ब्रह्मज्येष्ठ होता है। सब देव अमृत-सहित साथ रहते हैं।

ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः;
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ।

वह समिधा से युक्त, मृगचर्मधारी, दाढ़ी-मूछों से युक्त पूर्व से उत्तर समुद्र तक जाता है, वह बारंबार लोक में आचरण करता है।

इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामाजभार प्रथमो दिवं च ;
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पितभुवनानि विश्वा ।

इस भूमि और आकाश की वह प्रथम भिक्षा करता है, फिर उनकी समिधा बनाता है। इन्हीं के बीच विश्व के भुवन हैं।

अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनुभूमौ जभार ;
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।

वह मेघ की भाँति गर्जता हुआ, रक्त नेत्रवाला, भूरा, बृहत्

आकारवाला भूमि को पोषण करता है। अपने वीर्य से पृथ्वी को सींचता है। उससे दिशाएँ जीवित होती हैं।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति;

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते।

ब्रह्मचर्य के तप से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है, और आचार्य ब्रह्मचर्य से ब्रह्मचारी को चाहता है—

इस सूक्त में और भी बहुत-से मंत्र हैं। अब हम इस सूक्त का भावार्थ लिख देना उचित समझते हैं—

ब्रह्मचारी ऐहलौकिक और पारलौकिक विद्याओं का अध्ययन करके उत्तम ज्ञान प्राप्त करता है, और विद्वान् बनकर आचार्य के परिश्रम को सफल करता है।

ब्रह्मचर्य के बल पर वह विविध दैवी शक्तियों पर प्रभुत्व प्राप्त करता है।

आचर्य उसे आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक अंधकारों से बचाकर श्रेष्ठ ज्ञान देता, और उसे परिपक्व-बुद्धि बनाता है।

शिक्षा प्राप्तकर वह आचार्य से पृथक् होता है, और अपने ज्ञान और अध्यवसाय से जगत् को लाभ पहुँचाता है।

वह अपने तप और इंद्रिय-दमन के कारण सर्वत्र प्रतिष्ठित होता है। वह ब्रह्मचारी अवस्था में कठोर नियमों का पालन करता है, और उसके दिव्य गुण सारे संसार में व्याप्त हो जाते हैं। वह भौतिक ज्ञान और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करता और

उनका अनुष्ठान भी करता है। उसका स्वर गंभीर, शरीर पुष्ट और मेघ के समान सबको अमृतदाता होता है।

आचार्य से सदाचार और ज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर वह शांत और शिष्ट हो जाता है। यदि वह आचार्य-पद प्राप्त करता है, तो प्रजापति के समान शोभा पाता है। राजा होता है, तो उत्तम रीति से राष्ट्र का पालन करता है। वह मृत्यु को विजय कर लेता है। पृथ्वी के सभी चराचर उसके वशीभूत हो जाते हैं। वह संसार की रक्षा करता और संसार को सत्य का प्रकाश प्रदान करता है।

पाठक देख सकते हैं कि उपर्युक्त सूक्त में ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा कितनी सुंदरता से की गई है। वास्तव में ब्रह्मचर्य की प्रशंसा में इससे अधिक उत्तम बात कोई दूसरी हो ही नहीं सकती।

प्राचीन काल के ग्रंथ और सभ्यताएँ ऐसे वाक्यों और गंभीर प्रवचनों से परिपूर्ण हैं, जिनमें ब्रह्मचर्य की महिमा पूर्ण रीति से बयान की गई है।

ब्रह्मचर्य से इतनी वस्तुओं की सिद्धि होती है—

१. विद्याध्ययन—विद्याध्ययन के लिये स्मृति, बुद्धि, मेधा, स्वास्थ्य, इंद्रिय-वश्यता और तत्परता, इतनी वस्तुओं की आवश्यकता रहती है। ये वस्तुएँ ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त हो सकती हैं। जो विद्यार्थी विद्याध्ययन करने के समय ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन नहीं करते, वे कदापि सफल विद्यार्थी नहीं होते।

२. सामर्थ्य-प्राप्ति—जिन्होंने भीष्मपितामह की सामर्थ्य देखी है, वे समझ सकते हैं कि ब्रह्मचर्य ही सामर्थ्य की एकमात्र सीढ़ी है। जितने योद्धा, पहलवान और वीर पुरुष देखने को मिलेंगे, वे जब तक ब्रह्मचारी रहे, तभी तक उनकी विजय रही।

३. धन-प्राप्ति—धन-प्राप्ति में स्थैर्य, सामर्थ्य और प्रतिभा की बड़ी आवश्यकता है। जो ब्रह्मचर्य ही से प्राप्त हो सकती है।

४. दीर्घायु-प्राप्ति—ओज मनुष्य को जीवन-शक्ति देता है। यह ओज वास्तव में वीर्य-रक्षा से उत्पन्न होता है, क्योंकि वीर्य का सार ओज है। प्राचीन काल में जो महा-दीर्घायु पुरुष हो गए हैं, वे सभी ब्रह्मचारी थे। वीर्य नाश करने-वाला व्यक्ति कदापि दीर्घायु नहीं हो सकता।

५. स्वास्थ्य-रक्षा—चाहे भी जितनी सावधानी से रहिए, परंतु यदि ब्रह्मचर्य नहीं पाला गया है, तो स्वास्थ्य-रक्षा नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य ही सब दोषों को समान रखता है।

६. सुसंतान-प्राप्ति—जो ब्रह्मचारी नहीं हैं, वे या तो संतान-रहित होंगे या उनकी संतान रोगी, अल्पायु और दुरा-चारिणी रहेगी। प्राचीन ऋषि-मुनि मनोवांछित संतान उत्पन्न कर सकते थे। इसका कारण यह था कि वे केवल ऋतु-काल में संतान के लिये ही स्त्री-गमन करते थे। पशुओं में आज भी यही

नियम है। जिस नर को अच्छा वीर्यदाता बनाना होता है, उसे ख़ास तौर पर सुरक्षित रक्खा जाता है।

७. रोग-निवृत्ति—ब्रह्मचर्य से अनेक रोगों की निवृत्ति हो जाती है। ब्रह्मचारी कठिन रोगों के आक्रमण को अनायास ही सहन कर लेते हैं। परंतु जो लोग वीर्य नष्ट कर चुके हैं, उनकी अकाल मृत्यु अनायास ही हो जाती है।

८. दिव्य ज्ञान—ब्रह्मचर्य से प्राप्त होता है। ब्रह्मचारी महात्मा हो जाता है, और वह सभी सूक्ष्म विषयों पर ठीक-ठीक विवेचन कर सकता है।

इस प्रकार वास्तव में संसार में मनुष्य के लिये ब्रह्मचर्य अत्यंत महत्त्व-पूर्ण वस्तु है। जिसने इस अमूल्य रत्न को नहीं प्राप्त किया, उसने कुछ भी प्राप्त नहीं किया।

तीसरा अध्याय

आदर्श ब्रह्मचारी

जब द्वापर का महायुद्ध हुआ, तब जरासंध, कालयवन, कंस, शिशुपाल आदि अधर्मियों के अत्याचार के दौरदौरे का बाजार इतना गर्म हो गया था कि प्रजा में हाहाकार मच गया था, पर उनके उत्कृष्ट बल और प्रभाव को देखकर किसी को भी उनके आगे सिर उठाने की हिम्मत न हुई। पर श्रीकृष्ण ने बारह ही वर्ष की अवस्था से उनके आगे सिर उठाया, उनके गर्व को तोड़ा, और निरंतर परिश्रम करके यत्न, युक्ति और बल से उनका मूलोच्छेद करके धर्म-राज्य की नींव स्थापित की। इतना करते हुए भी किसी ने उन्हें घबराते या उदास नहीं देखा। वह सदा आनंद-कंद रहे। दुःख मानो उनके लिये निर्माण ही नहीं हुआ था।

ब्रह्मचर्य के ही प्रभाव से उनकी अंतर्दृष्टि बिल्कुल स्थिर थी। द्वारका में इधर शल्य के साथ उनका घोर युद्ध हो रहा था, उधर द्यूत-सभा में द्रौपदी के वस्त्राहरण में द्रौपदी की रक्षा करना वह नहीं भूले।

कुरुक्षेत्र में युद्ध की आग भड़क रही थी। खून के प्यासे योद्धा जान पर खेलकर समर-भूमि में डटे थे। भीषण

दृश्य सम्मुख था, जिसके ध्यान ही से रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

बाप, बेटे, भाई, ब्राबा सब अपने ही आत्मीयों के रक्त से हाथ रँगने को पागल हो रहे थे। सभी हतचेत और उन्मत्त थे। हिंसा और स्वार्थ की अग्नि सभी के हृदयों में प्रचंड वेग से धधक रही थी। यह सब देखकर अर्जुन ने हाथ से धनुष पटक दिया, और दुःख में भरकर कहा—"महाराज, मेरे हाथ से धनुष खिसका पड़ता है, चमड़ो जली जाती है, मन में उद्वेग आ रहे हैं, मैं खड़ा भी नहीं रह सकता। अपने स्वजनों को मारकर अपना श्रेय नहीं चाहता। जिनके लिये हम राज्य-धन चाहते हैं, वही प्राणों का मोह छोड़कर मरने पर डटे हैं। ये गुरु हैं, ये चाचा हैं, ये भतीजे हैं, ये भाई हैं, ये संबंधी हैं, ये सब हमें मारने को तुले हैं। यह जानकर भी हे मधुसूदन! इनको मारकर हम त्रिलोकी का भी राज्य नहीं चाहते।"

अर्जुन की ऐसी मोह-बुद्धि देखकर भी कृष्ण विचलित न हुए। उनका मन तब भी शांत था, और इसी कारण ऐसी गड़बड़ी के समय में कृष्ण ने गीता-महोपदेश अत्यंत शांत भाव से अर्जुन को दिया। ऐसा धैर्य बिना ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा के नहीं आ सकता, न बिना ब्रह्मचर्य के ऐसी अंतर्दृष्टि और स्थिरता ही आ सकती है।

सारे संसार में श्रीकृष्ण के व्यभिचार की कहानियाँ गाई जाती हैं। इतनी, जितनी शायद ही किसी महापुरुष की गाई गई

हों । परंतु श्रीकृष्ण मनुष्य-जीवन की गृहस्थी के आदर्श नमूने हैं । भागवत में जहाँ इस बात का वर्णन किया है कि उनकी वंशी की ध्वनि सुनकर सैकड़ों गोपियाँ विह्वल होकर उनके पीछे दौड़ती थीं, हमें इस बात की शिक्षा मिलती है कि भगवान् कृष्ण कितने उच्च श्रेणी के इंद्रिय-विजयी थे । क्या कोई ऐसा भी उदाहरण है, जहाँ कृष्ण स्त्रियों के पीछे पागल हुए फिरे हों । क्या यह सत्य नहीं कि लंपट पुरुष ही स्त्रियों के पीछे फिरा करते हैं, न कि स्त्रियाँ उनके पीछे ।

फिर क्या उस समय के पुरुष इतने निर्लज्ज और बेग़ैरत हो गए थे, जो अपनी बहन-बेटियों को ऐसे पुरुष के पास आने देते थे, जिसके साथ उनका अच्छा संबंध न था । इससे तो यही साफ़ प्रकट होता है कि श्रीकृष्ण के ब्रह्मचर्य और इंद्रिय-वश्यता पर सभी को पूरा-पूरा विश्वास था, और लोग निर्भय अपनी स्त्रियों, बेटियों और बहनों को उनके पास आने देते थे ।

भीष्मपितामह संसार के श्रेष्ठ ब्रह्मचारी हैं । पिता की वासना चरितार्थ करने के कारण उन्होंने कठिन ब्रह्मचर्य-व्रत का आजन्म पालन किया । एक ऐसे राजपुत्र का, जो वास्तव में सब भोगों का अधिकारी था, जिसके विवाह की सभी तैयारी हो चुकी थी, पिता के कारण जीवन के सुख को त्याग देना साधारण नहीं । भीष्म-जैसे प्रबल योद्धा, जिनके सम्मुख एक बार कृष्ण को भी अपनी प्रतिज्ञा भूलकर क्षुब्ध होना पड़ा, ब्रह्मचर्य के ज्वलंत उदाहरण हैं ।

मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की दृढ़ता, धैर्य, शांति, त्याग और पवित्रता की बात विचारते हुए हृदय गद्गद् हो जाता है। एक तरफ़ रावण-जैसा दुर्जय एवं प्रबल प्रतापी शत्रु, लंका-जैसा दृढ़ क़िला तथा समुद्र-सी खाई, बड़े-बड़े भयानक राक्षस जिसके रक्षक, जिनका काम ही हिंसा और कुटिलता है, कुंभकर्ण-जैसा महारथी भाई, मेघनाद-जैसा अजेय पुत्र और दूसरी ओर अकेले राम, नंगे पैर, नंगे सिर, हाथ में धनुष और हृदय में अजेय आत्मबल। ऐसा मारा कि नामलेवा और पानी देनेवाला भी न बचा। यह उनके ब्रह्मचर्य की महिमा का प्रभाव था। पत्नी के साथ रहते हुए भी १३ वर्ष तक भयानक वन में ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहना वास्तव में असाधारण तप है।

जिस समय मदोन्मत्त होकर क्षत्रिय मर्यादा का उल्लंघन कर रहे थे, उन्हें अपने प्रबल प्रताप से नाथनेवाले परशुराम और हिरण्यकशिपु को केवल नाखूनों से चीरनेवाले नृसिंहदेव तथा समुद्र को उल्लंघन करके असाध्य साधन साधनेवाले हनुमान् पूर्ण ब्रह्मचर्य के प्रताप ही से अपना अटल आतंक संसार-पट पर जमा गए हैं।

रावण के पुत्र मेघनाद का जिन्होंने हनन किया, उस केसरी का नाम कौन नहीं जानता? सुलोचना बड़ी पतिव्रता स्त्री थी। उसी के पातिव्रत धर्म के बल से मेघनाद अजेय हो गया था। सुलोचना के पास ख़बर पहुँची कि मेघनाद मारा गया, तो उसने एकदम विश्वास करने से इनकार कर दिया। उसने

कहा, राम में क्या शक्ति है कि मेरे पति को पराजित करे, जो बारह वर्ष नींद मारकर अखंड ब्रह्मचारी रहेगा, वही उन्हें पराजित कर सकेगा, नहीं तो पति का बाल बाँका करनेवाला किसी माता ने नहीं जन्मा है। उसकी प्रचंड मूर्ति और तीक्ष्ण वाणी सुनकर दास-दासी भय से थर-थर काँपने लगे। उसका क्रोध सीमा से बाहर हो गया। उसे अपने पति की मृत्यु पर बिलकुल विश्वास नहीं था। तब एक दासी ने हाथ बाँधकर कहा—देवि, सत्य ही लक्ष्मण ने आज उनका वध कर डाला।

बस, लक्ष्मण के नाम में बिजली का प्रभाव था। उसे सुनते ही सुलोचना का लाल मुख पीला पड़ गया। आँखों का प्रकाश बुझकर अंधकार छा गया। उद्दंड मुख नीचे झुक गया। हाँ, तब तो मैं निश्चय विधवा हुई, यही उसके मुख से निकला, और वह मूर्च्छित होकर धरती पर गिर गई। उसे लक्ष्मण के ब्रह्मचर्य पर उतना ही विश्वास था, जितना अपने पतिव्रत-धर्म पर।

लक्ष्मण वास्तव में ऐसे ही आदर्श ब्रह्मचारी थे। जिस समय राम सीता की तलाश में मूक-पर्वत पर आकर सुग्रीव से आभूषण पाकर पहचानते हैं और लक्ष्मण को दिखाकर पूछते हैं कि क्या ये आभूषण सीता के हैं ? तब लक्ष्मण उत्तर देते हैं—

केयूरं नैव जानामि नैव जानामि कुण्डलम्;
नूपुरावयेव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।

मैं इन भुजबंदों को नहीं जानता, क्योंकि कभी उनको नहीं देखा, और न इन कुंडलों को ही जानता हूँ। हाँ, इन बिछुआ

को पहचानता हूँ, क्योंकि चरण-वंदना करती बार नित्य देखा करता था।

इन वाक्यों का कथन करनेवाला वीर त्रैलोक्य विजय कर सकता है, इसमें संदेह नहीं।

बाल्यावस्था ही से जिन्हें बड़े-बड़े सिद्ध-मुनियों में उच्चासन मिलता था, ऐसे प्रबल दिव्य ब्रह्मचारी व्यास-पुत्र शुकदेव का नाम सभी हिंदू जानते होंगे। जिस समय वह पिता के आश्रम से निकलकर विरक्त होकर वन को चले, तो मार्ग ही में गंगा पार करती थी, तब कितनी ही नग्न नहाती हुई स्त्रियों ने उन्हें देखा, और नहाती रहीं। पर जब व्यास उन्हें ढूँढ़ते हुए वहाँ पहुँचे, तो उन्होंने एकदम पर्दा कर लिया। व्यास बड़े अचंभित हुए। पुत्र-शोक को तो भूल गए, और कहा—देवियो! यह क्या बात है? पुत्र शुकदेव तुम्हारे बीच से निकल गया, पर तुमने पर्दा नहीं किया। मैं वृद्ध हूँ—तुम सब मेरी पुत्री हो, फिर मुझी से क्यों पर्दा किया? स्त्रियों ने हँसकर व्यासदेव को प्रणाम किया, और कहा—देव! ऐसा कौन है, जो आपको न जानता हो। आप-जैसे तत्त्वदर्शी के दर्शनों से सच्ची शांति मिलती है। परंतु हे शांतिधाम मुनि! शुकदेव युवा है, तो क्या हुआ, वह जानता ही नहीं कि हम स्त्रियाँ हैं, और हम किस काम में लाई जाती हैं। और आप सब कुछ होने पर भी हमको जानते हैं, हमारा उपयोग भी जानते हैं। इसी से हमने आपसे पर्दा किया है। आप क्षमा करें।

कहिए, ऐसे ब्रह्मचारी युवा की ऋषि पूजा न करें, तो किसकी करें।

पूज्यपाद शंकराचार्य ने अखंडित ब्रह्मचर्य का असाधारण प्रभाव जगत् को दिखा दिया है। उनकी अगम्य बुद्धि-विलक्षणता का पता उपनिषद्, व्यास-सूत्र, गीता आदि गहन पुस्तकों पर उनके भाष्य देखकर लग सकता है, जिनमें किसी से भी खंडन न किए जाने योग्य अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया गया है।

भगवान् बुद्ध और महावीर स्वामी का प्रादुर्भाव और सब वासनाओं को त्यागकर एकनिष्ठ होकर धर्म-साधन और पवित्र जीवन का आश्रय लेना तथा लक्षावधि लोगों को सन्मार्ग का सीधा पथिक बनाना क्या साधारण बात है। राज्य-वैभव, यौवन के सुख, जीवन की सभी वासनाओं पर विजय प्राप्त कर कठिन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना दुस्साध्य तप है।

जिस समय समस्त भारत में घोर खलबली मची थी, वैदिक धर्म का तेल-रहित दीपक टिमटिमा रहा था, ढेर-के-ढेर हिंदू धड़ाधड़ मुसलमान हो रहे थे, और हिंदुओं के शिखा-सूत्र पर आ बनी थी, उस समय एक ब्रह्मचारी ने ऐसी ठोकर लगाई कि मरी जाति जी उठी। यह ब्रह्मचारी यति दयानंद था। देश-भर इस प्रतापी साधु के धक्के को स्वीकार करेगा। प्राचीन ग्रंथों में हमें इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि ब्रह्मचारीगण कैसे कठिन जीवन और व्रत-पालन करके

अपना ब्रह्मचर्य निर्वाह करते थे। महाभारत में एक अद्भुत उदाहरण है—

धौम्य ऋषि के तीन शिष्य थे। उनमें से एक का नाम था उपमन्यु। गुरु ने उन्हें गाय चराने को भेज दिया। वह दिन-भर गाएँ चराते, और शाम को लाकर गुरु के घर बाँध देते। एक दिन शाम को उपमन्यु गुरु के पास गए, और प्रणाम कर खड़े हो गए। गुरु ने पूछा—"बेटा उपमन्यु, तुम क्या खाते-पीते हो, जो इतने मोटे हो रहे हो?"

उपमन्यु ने उत्तर दिया—"मैं भिक्षा माँगकर खाता हूँ।"

गुरु ने कहा—"बिना मुझे अर्पण किए भिक्षा-भोजन करना उचित नहीं।"

"अच्छी बात है।" कहकर उपमन्यु ने भिक्षा माँग सब गुरुजी के आगे धर दी। गुरुजी ने सब सामग्री ले ली। कुछ दिन तक ऐसा ही होता रहा।

कुछ दिन बाद गुरुजी ने फिर पूछा—"बेटा उपमन्यु, अब तुम क्या खाते हो, जो इतने मोटे-ताजे हो रहे हो?"

उपमन्यु ने कहा—"मैं फिर भिक्षा माँग लाता हूँ।"

गुरु ने कहा—"यह अनुचित है। दुबारा भिक्षा माँगना ब्रह्मचारी को उचित नहीं।"

उपमन्यु ने कहा—"बहुत अच्छा।"

थोड़े दिन बाद फिर गुरु ने उसे मोटा-ताजा देखकर कहा—"अब तुम क्या खाते हो?"

उपमन्यु ने कहा—"अब मैं गायों का दूध पी लेता हूँ।"

गुरु ने कहा—"यह तो ठीक नहीं। गाएँ मेरी हैं, मेरी आज्ञा बिना तुम उनका दूध कैसे पीते हो?"

उपमन्यु ने कहा—"अब मैं ऐसा न करूँगा।"

थोड़े दिन बाद गुरु ने कहा—"उपमन्यु पुत्र, तुम अब भी मोटे-ताजे हो, अब क्या खाते हो?"

"महाराज, मैं बछड़ों के मुँह पर लगे फेन को चाट लेता हूँ।"

गुरु ने कहा—"यह उचित नहीं है। इससे बछड़े दुर्बल हो जायँगे।"

उपमन्यु ने कहा—"बहुत अच्छा, अब ऐसा न होगा।"

अब उपमन्यु ने विवश हो आक के पत्ते खाकर निर्वाह शुरू कर दिया। उन कड़ए, गर्म और जहरीले पत्तों को खाने से उपमन्यु अंधे हो गए, और एक कुएँ में गिर गए।

जब गुरुजी ने देखा कि उपमन्यु नहीं आया, तो वह उसे खोजने निकले। वन में आवाज लगाई, तब उपमन्यु कुएँ से चिल्लाकर बोला—"गुरुजी, मैं यहाँ पड़ा हूँ और मुझे कुछ भी नहीं दिखाई देता है, क्योंकि मैं चिरकाल से आक के पत्ते खा रहा हूँ।"

गुरुजी ने उसे निकाला, उपचार कराया, और तब उसे स्नेह से विद्या-दान दिया।

चौथा अध्याय

ब्रह्मचर्य-साधन की कठिनाइयाँ और विघ्न

गीता में लिखा है—

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ।

विषय और इंद्रिय-संयोग से जो सुख प्रथम अमृत के समान सुखकर प्रतीत होते हैं, वे परिणाम में विष के समान घातक हो जाते हैं। ये सभी सुख राजस-सुख हैं।

शरीर और इंद्रिय ही जीवन की मुख्य संपत्ति हैं। यदि हमारी उँगली में ज़रा-सा काँटा चुभ जाता है, तो हमारी तमाम जीवन-शक्ति विकल होकर उधर ही लग जाती है—और इसी प्रकार यदि थोड़ा भी इंद्रिय-सुख हमें प्राप्त होता है, तो हम उसके प्रलोभन को नहीं त्याग सकते। यह एक स्वाभाविक बात है, और आज लक्षावधि मनुष्य इसी प्रकार अपने जीवन को अपनी इंद्रिय-जन्य वासनाओं पर बलिदान कर रहे हैं, जिनके विषय में उपर्युक्त गीता के श्लोक में कहा गया है कि प्रथम वे अमृत के समान मधुर प्रतीत होते हैं, पर उनका परिणाम विष के समान घातक है।

हमने अपने वैद्यकीय जीवन में इंद्रिय-वासना के अतिशय

करुण और गंभीर दृश्य देखे हैं। कुछ का उदाहरण हम यहाँ उपस्थित करते हैं—

एक राजा साहब, जो हाल ही में राज्य के अधिकारी हुए थे, शराब के बुरी तरह वशीभूत थे। जब हमने उन्हें देखा, उनकी आयु लगभग २४ वर्ष की होगी, अतिशय सुंदर, गौर-वर्ण शरीर और अत्यंत रूपवान् आकृति, परंतु उनका रंग हल्दी के समान पीला हो गया था, और मुख, हलक और आमाशय तक तमाम आहार-नली घावों से परिपूर्ण थी। कोई भी खाद्य पदार्थ, दूध को छोड़कर, उनके पेट में जाना संभव न था। पिछले आठ मास से बिना एनीमा दिए उन्हें दस्त न होता था, और लगभग पाँच मास से उनकी नींद उड़ गई थी। वह क्षण-भर में वमन करने की इच्छा करते थे, पर वमन होती नहीं थी। पेशाब शहद के समान था, और हृदय की धड़कन के कारण वह एक क्षण भी स्थिर होकर नहीं लेट सकते थे।

हमसे प्रथम उन्होंने यही प्रश्न किया—देखिए, मैं शराब जीते-जी न छोड़ सकूँगा, यह आप अच्छी तरह समझ लें। फल-स्वरूप वह सुंदर भाग्य-हीन राजा उसी अल्पायु में काल का ग्रास हुआ।

इसी प्रकार का उदाहरण एक और है। वह एक करोड़पति सेठ का एकमात्र उत्तराधिकारी युवक था। आयु २२ वर्ष। वह सूखकर काला पड़ गया था, चमड़ी भैंस के समान हो गई थी, और वह प्रतिक्षण थर-थर काँपता रहता था। जरा भय

दिखाने से वह उसी समय मल-मूत्र त्याग देता था। दिन में १०-२० बार मूर्च्छित हो जाता था। वह अतिशय कष्ट भोगकर शराब पीते-पीते मर गया।

बहुत-से आदमी खाने-पीने के बड़े शौक़ीन होते हैं, और केवल खाने-पीने में इस क़दर असंयत हो जाते हैं कि वह भोजन ही उनके लिये भयानक विष बन जाता है। साधारणतया सैकड़ों ऐसे रोगियों को हम देखते हैं, जो अपनी जिह्वा को वश में नहीं कर सकते। किसी रोम के बादशाह की बाबत हमने पढ़ा था कि वह खाने का इस क़दर शौक़ीन था कि सदैव नई-नई वस्तु खाने को माँगता था, और खाकर वमन कर देता तथा और पदार्थ खाता था। जब उसे मालूम हुआ कि अब जगत् में कोई नई वस्तु खाने को नहीं रही, तब उसने निराश होकर आत्मघात कर लिया।

हम बहुधा ऐसे व्यक्तियों को देखते हैं, जिन्हें भली भाँति समझा दिया गया है कि अमुक वस्तु मत खाना, वरना मर जाओगे, परंतु वे वही खाते हैं, और ख़ुशी से मर जाते हैं। वास्तव में यह मनुष्य की अतिशय दयनीय दशा है।

बहुत-से लोग कन-रसिया हो जाते हैं। उन्हें वेश्याओं के गाना सुनने का चस्का पड़ जाता है, और वे सहस्रों रुपए उसमें फूँक देते हैं। हमें आश्चर्य तो यह देखकर हुआ कि हमने ऐसे आदमियों में ऐसे लोग भी देखे, जो वास्तव में गायन-कला से बिलकुल अनभिज्ञ थे, परंतु व्यसन के वशीभूत होकर वे बिना गाना सुने नहीं रहते थे।

यह बात तो निर्विवाद स्वीकार कर ली जायगी कि विषयेंद्रिय सभी स्वादेंद्रियों से बढ़कर है, और यह मनुष्य को जब अपना ग़ुलाम बना लेती है, तब उसका उद्धार होना अति कठिन पड़ जाता है।

हमने ऐसे-ऐसे लंपट, कुमार्गी पुरुषों को देखा है, जो अपनी इस पशु-वृत्ति के कारण अपने शरीर की समस्त सामर्थ्य गँवा बैठे हैं, और वे अन्य स्त्री-पुरुषों अथवा पशुओं से यह कुत्सित क्रिया कराकर उसे देखने ही से आनंद का अनुभव करते हैं। हम नहीं कह सकते, मनुष्य के लिये पतन का इससे बढ़कर और कौन-सा मार्ग हो सकता है।

शरीर में मस्तिष्क और हृदय में दो जीवन-यंत्र हैं, और इन्हीं के द्वारा शरीर का संचालन होता है। इन दोनो यंत्रों से संलग्न जो जीवन-स्नायु हैं, वे विविध इंद्रियों से जीवन-केंद्र को संबंधित करती हैं, और इस प्रकार जीवन-केंद्र उन-उन इंद्रियों के स्वाद को ग्रहण करता है।

अब मूल प्रश्न तो यह रह जाता है कि इंद्रियों में वेग से प्रवृत्त होते हुए जीवन-केंद्र को किस भाँति रोका जाय? साधारणतया यह बात सब कोई कह सकते हैं कि जीवन का मूल-उद्देश्य इंद्रियों के स्वाद को ग्रहण करना है। जब परमेश्वर ने हमें इंद्रियाँ दीं, स्वास्थ्य दिया, यौवन दिया और सब सुविधाएँ दीं, तो इनका उपभोग क्यों न करें? इंद्रियों के विषयों को रोकने से हमें क्या लाभ हो सकता है?

इस प्रश्न का उत्तर इतना टेढ़ा है कि वह सरलता से हर किसी की समझ में नहीं आ सकता। परंतु हम इसका उत्तर एक उदाहरण से देना चाहते हैं। कल्पना कीजिए, आपके पास एक लाख रुपया है, और आप उसके स्वामी हैं। उसे खर्च कर देने की आपको पूर्ण स्वाधीनता है, और उसके व्यय कर देने ही से विविध सुख-सामग्रियाँ आपको प्राप्त हो सकती हैं, तब आप उसे व्यय क्यों नहीं कर देते?

अच्छा, आपने उसे व्यय कर दिया। जब वह समाप्त हो गया, तब आप क्या करेंगे? उस रुपए से जो आपने सुख-सामग्री खरीदी थी, उसके चुक जाने पर आप अब कहाँ से खरीदेंगे? आपको जिन सुखों के भोगने की आदत पड़ गई है, उसे कैसे भोगेंगे? प्रथम जब आपको उन सब बातों का अभ्यास न था, तब उनके बिना आपको ऐसा ज्यादा कष्ट न था, पर अब जब कि आप उनके आदी बन गए हैं, क्या करेंगे?

अवश्य ही आप घोर दुःख में पतित होंगे, और आप तत्काल समझ जायँगे कि यह रुपया हमें इस प्रकार खर्च नहीं कर देना चाहिए था, बल्कि उसका विनिमय और व्यवसाय करना था कि उसका विनिमय-प्रवाह चलता रहता।

अच्छा, एक दूसरे व्यक्ति ने वह एक लाख रुपया पाकर समझा कि यह खर्च करने के लिये नहीं, प्रत्युत व्यवसाय चलाने के लिये है। अपने जीवन का एक नियत भाग हमें इस धन के साथ परिश्रम करने में व्यय करना चाहिए, और एक नियत भाग

इसके भोग के लिये। उसने नियम और मात्रा से उस धन के साथ व्यवसाय किया। मात्रा के अंदर उससे। उपभोग भी किया। फल यह हुआ कि रुपए का विनिमय-प्रवाह चल निकला, और वह सदैव के लिये उत्तम हो गया। उस पुरुष ने उसे ठीक-ठीक भोगा भी।

अब आप देखिए, बुद्धिमान् पुरुष कौन है? अवश्य वही है, जिसने उनका विनिमय-प्रवाह पैदा किया है।

जो किसान बीज को उत्पादन-शक्ति को पहचान एक के सौ बीज पैदा करके कुछ खाता और शेष बो देता है, वही चतुर है; पर जो केवल सब बीज खा डालता है, वह मूर्ख है।

ठीक इसी प्रकार इंद्रियों का भी हाल है। इंद्रियों का अस्तित्व केवल भोगों के लिये नहीं। आप यदि ग़ौर से विचार करेंगे, तो इंद्रियों के विषयों में अनेक आवश्यक उपयोग देखेंगे।

जिह्वा-इंद्रिय केवल स्वाद के लिये नहीं, शरीर-पोषण और बोलना भी उसका काम है। कान केवल गाना सुनने के लिये नहीं, बहुत-सी काम की बातों से जीवन-केंद्र को अवगत करने के लिये हैं। आँखें केवल रूप देखने के लिये नहीं, गड्ढे में गिरने से बचाने के लिये भी हैं। इसी प्रकार जननेंद्रिय विषय-वासना के लिये नहीं, प्रजनन-कार्य और मूत्रोत्सर्ग के लिये भी है।

आप एक अंधे आदमी को देखिए, वह कितना अभागा और लाचार है, वह पद-पद पर ठोकर खाता है, वह टटोल-टटोलकर चलता है। वह दीन-हीन की भाँति जी रहा है।

संसार उसके सामने अँधेरी रात में सदा के लिये परिवर्तित है। आपके लिये सूर्य निकलता है, प्रभात होता है, फूल खिलते हैं, और न-जाने क्या-क्या सुंदर बातें होती हैं, पर उसके लिये अंधकार-ही-अंधकार है। आप उससे पूछिए, अपने ही मन से पूछिए कि नेत्रों का क्या उपयोग है? क्या सुंदरियों का घूरना-मात्र?

आह! इसी प्रकार मनुष्य जड़ता में मग्न होकर वासना का दास बन जाता है, और वह तब तक अपनी इंद्रियों की शक्ति को क्षय करता रहता है, जब तक वे सर्वथा क्षीण नहीं हो जातीं।

ब्रह्मचर्य-विज्ञान का अर्थ यह है कि अपनी इंद्रियों को नियंत्रण में रक्खो। उन्हें भोग का माध्यम मत बनाओ। वे वास्तव में जीवन-व्यवसाय के विनिमय की वस्तु हैं। उनसे ज्ञान उपार्जन करना, उपार्जित ज्ञान का विनिमय करना, और उससे प्राप्त लाभ से अपने जीवन का लाभ उठाना। जो मनुष्य यह काम करते हैं, वे ही सदा को अमर हो जाते हैं।

हम उदाहरण से यह कठिन बात समझाना चाहते हैं।

आप जननेंद्रिय को ही ले लीजिए। कल्पना कीजिए, इसके उपयोग के संबंध में दो मत हैं—

१—खूब भोग-विलास करो।

२—इसकी वासना को रोको, शक्ति को संचित करो, और समय पर संतान उत्पन्न करो।

पहले मत पर अमल किया गया। खूब भोग-विलास किया

गया। सहस्रों स्त्रियों से संबंध स्थापित किया गया। सब काम-धंधे छोड़ दिए गए। फल क्या हुआ—

१—आप जगत् का कोई दूसरा काम न कर सके। लखनऊ के नवाबों ने इसी रास्ते पर चलकर राज्य खोया। मुगल-तख्त भी इसी दोष के कारण गया। अनेक श्रीमंत भी इसी मार्ग से नष्ट हुए। आपका यदि कोई कार-बार, व्यवसाय है, और उसे आपने नौकर-चाकरों पर छोड़ दिया, तो वे आपको लूटकर खा गए। आपको तजुर्बा उठाने और काम सीखने का अवसर ही नहीं मिला, आप अपने नौकरों के गुलाम रहे। दो कारणों में से एक कारण यह कि व्यवसाय के विषय में आप अनाड़ी हैं, यद्यपि वही व्यवसाय आपको भोग-विलास के लिये पुष्कल धन देता है। दूसरे, आप विषय-वासना से फ़ुर्सत ही नहीं पाते, इस कारण आप स्त्रियों के दास हो गए। फल-स्वरूप आपको अनेक मूर्खताएँ और अनर्थ भी करने पड़े।

२—शीघ्र ही आपकी इंद्रियाँ क्षीण हो गईं। शक्ति घट गई। उसे आपने दवाइयों या मद्य आदि उत्तेजक और कृत्रिम रीतियों से पूर्ण करने की चेष्टा की, पर चूँकि क्षय बराबर जारी था, उससे पूर्ति न हुई। अप्राकृत रीति से चेष्टा करने से शरीर में विष भर गया। इंद्रियों का तेज नष्ट हो गया। मानसिक वासनाएँ भड़क उठीं। अतृप्त वासना ने आपको विकल कर दिया। अब आप इंद्रिय-सुख से रहित, किंतु अतृप्त वासना से विकल रहने लगे।

३—शराब, औषध और अप्राकृत क्रियाओं ने आपके शरीर को भयानक रोगों का शिकार बना दिया। आप दुखी, रोगी, जर्र हो गए। आपका कार-बार भी चौपट हो गया। चूँकि आपने कभी उसे नहीं सँभाला, आप दरिद्रता, रोग और चिंता में फँस गए। आपके ऊपर विश्वासघात के आक्रमण होने लगे, और आप चारो ओर से घेरे गए। आपने कभी किसी को लाभ नहीं पहुँचाया, इसलिये आपका कोई मित्र न रहा। आप सबकी सहानुभूति से शून्य होकर अकाल ही में मर गए।

भले ही आप राजा-महाराजा या शाहंशाह ही क्यों न हों, यदि आपने यह रास्ता पकड़ा, तो आपको यही दिन देखना पड़ा। अच्छा, आपने दूसरा मार्ग ग्रहण किया। वासना पर विजय प्राप्त की, और संयम से संतान-उत्पत्ति की, तब क्या हुआ—

१—आप सद्गृहस्थ बने। सुंदरी, सुशीला स्त्री से विवाह किया। आप दोनो का दांपत्य-प्रेम बड़ा मधुर है, आपका व्यवसाय छोटा है, थोड़ी आय है, तो हर्ज नहीं, उसी में आप संयम और सावधानी से सब खर्च चला लेते हैं। आप ऋतुगामी हैं, स्त्री से मित्र-भाव रखते हैं, लंपटता के भाव आपके मन में नहीं हैं।

२—आपके पुत्र हुआ। वह बढ़ा, उसकी शिक्षा हुई, वह शीघ्र ही आपके समान हो गया, अधिक शिक्षा पाकर वह

अधिकार-संपन्न हुआ, उसने आपका मान-गौरव बढ़ाया, उच्च पद पाया, आपकी आर्थिक अवस्था भी सुधर गई।

३—आपके और भी पुत्र हुए। सभी कमाऊ और सदाचारी। उनके विवाह हुए, संबंध हुए, आपके मित्र-हितैषी बढ़े। धीरे-धीरे काम आपके हाथ से पुत्रों के हाथ में गया, आप निश्चिंत हुए, लोक-सेवा में लगे। आत्मचिंतन में लगे। लोग आपको देखते ही आदर करते हैं। आपको श्रेष्ठ और प्रतिष्ठित पुत्रों का पिता और सदाचारी गृहस्थ तथा साधु-प्रकृति का सज्जन समझते हैं। आप शक्ति-भर सबकी सहायता करते हैं।

४—आपके पुत्रों के पुत्र हुए। वे अधिक योग्य हुए। आपका खानदान चोटी पर चढ़ गया। आपने पूर्ण आयु पाई। आपका अनित्य शरीर नष्ट हो गया, पर आपका वंश संसार में रहा। आप वंश के निर्माता, वंश के रक्षक कहलाए। आपने अपने जीवन का, अपने शरीर का अच्छा सदुपयोग किया, आप ईश्वर के प्यारे बन गए।

उपर्युक्त दोनो उदाहरणों से आप समझ सकते हैं कि वास्तव में इंद्रियों और शरीर का सच्चा उपयोग क्या होना उचित है।

आप कहेंगे, यह बड़ा कठिन मार्ग है। यह सच तो है, परंतु संसार में कठिन कार्य भी होते ही हैं। फिर जो कार्य जीवन और शरीर का मुख्य कार्य है, वह चाहे भी जैसा कठिन हो, करना ही चाहिए। फिर यदि हम यह कहें कि वह उतना कठिन

नहीं, जितना लोग समझते हैं। देखिए, एक व्यभिचारी पुरुष किसी पर-स्त्री पर आसक्त है, और वह उसे प्राप्त करना चाहता है। अब आप इस बात पर विचार कीजिए कि उसके लिये उस स्त्री का प्राप्त करना कठिन है या उसका विचार त्याग देना ?

निस्संदेह उसके लिये उस स्त्री का प्राप्त करना अति कठिन है। उसके लिये उसे अत्यंत जोखिम सिर पर लेनी पड़ती है। संभव है, वह पकड़ा जाय, और उसे अपमानित होना पड़े। संभव है, उसे जान खोनी पड़े, और यदि वह अपने विचार को त्याग देता है, तो वह सभी विपत्तियों से बच जाता है। परंतु वह कठिन जोखिम ही सिर पर लेता है, और उस स्त्री को प्राप्त करने की हद दर्जे चेष्टा करता है।

इससे आप क्या समझे ? यही कि उसे उस स्त्री की लगन है, और वह लगन ही उससे असाध्य-साधन कराती है, यदि ऐसी ही लगन उसके संयम और ब्रह्मचर्य के लिये हो जाय, तो उसके मन में ये भाव भी न पैदा हों कि यह कितना कठिन है।

आपने भक्त तुलसीदास का चरित्र सुना होगा। वह अपनी स्त्री को कितना चाहते थे। कहते हैं, एक बार उनकी स्त्री बिना उनसे पूछे पिता के घर चली गई। वह अर्धरात्रि को ही वहाँ चल दिए। नदी पार करनी थी, और बरसाती नदी उमड़ रही थी। पार जाने का साधन न था। एक मुर्दा बहा जा रहा था, उसी को पकड़कर चढ़ बैठे, और पार उतर गए। घर पहुँचे, तो देखा, एक सर्प लटक रहा है, उसे रस्सी समझ उसी को पकड़कर

पढ़ गए। जब स्त्री के सम्मुख पहुँचे, तब उसने आश्चर्य से कहा—"इस समय किस तरह आए?" जब उसने सब हक़ीक़त जानी, तो कहा—"स्वामिन्! इस हाड़-मांस और मल-मूत्र से परिपूर्ण शरीर के लिये आपने इतनी लालसा की और प्रयास किया, इससे आपको क्षणिक सुख के सिवा और क्या मिलेगा? जिसमें आपका जीवन ही बूँद-बूँद होकर क्षय होगा। इतनी लालसा यदि आप परमेश्वर से लगाते, तो संसार से तर जाते।" यह बात सुनते ही तुलसीदास को ज्ञान हो गया, और उसी समय उन्होंने पत्नी को धर्म की माता कहा, और चल दिए। वह कैसे उत्कट विरागी और भक्त बने, इसे हिंदू-मात्र जानता है।

यही दशा सूरदास की भी सुनी जाती है कि एक पर-स्त्री पर आसक्त होकर जब वह उसके घर पहुँचे, तब उस स्त्री के ज्ञान देने से वह इतने लज्जित हुए कि उसी समय उस स्त्री से सुई माँगकर अपनी आँखें फोड़ लीं और जन्म-भर अंधे रहे।

इन उदाहरणों से हम स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वास्तव में ब्रह्मचर्य-साधन उतना कठिन नहीं, जितना ब्रह्मचर्य-भंग है। इसमें कोई खतरा नहीं। भय नहीं। केवल अभ्यास, स्थिरचित्तता और संयम आवश्यक है। हम आगे चलकर बताएँगे कि किस भाँति यह कठिन काम सिद्ध किया जा सकता है। और प्रत्येक पुरुष-स्त्री को उसी रीति से उस पर अभ्यास करना चाहिए।

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्मचर्य-साधना के पूर्व की तैयारियाँ

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य-साधना की इच्छा करे, उसे उससे पूर्व कुछ तैयारियाँ करनी पड़ती हैं। इस अध्याय में हम उन तैयारियों का जिक्र करेंगे। वे इस प्रकार हैं—

१—खान-पान का संयम।

२—दैनिक चर्या का संयम।

३—विचार-कल्पना का संयम।

४—बाह्य संसर्ग का संयम।

खान-पान का संयम

कहावत है—"जैसा खाय अन्न, तैसा बने मन।"

शास्त्र में लिखा है—"अन्नो वै प्राणः।"

चरकाचार्य कहते हैं—

"अन्नो प्राणिनां प्राणः तदयुक्तया हिनस्त्यसून्।"

"विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम्।"

अन्न से शरीर का पोषण होता है, और अन्न ही से वीर्य बनता है। अन्न ही से समस्त धातु बनते हैं। अन्न से रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से उसकी मींग और उससे वीर्य बनता है। यही वीर्य यदि शरीर

में स्थिर रह सके, तो फिर वह ओज का रूप धारण कर लेता है।

अन्न से शरीर के स्थूल और चैतन्य सभी अवयवों का घनिष्ठ संबंध है, जो अन्न तमोगुणी और रजोगुणी हैं, उनका यत्न से त्याग करना और सतोगुणी अन्न का सेवन करना परमावश्यक है। ब्रह्मचर्य की कामना करनेवाले व्यक्ति को इस प्रकार अन्न का ग्रहण और त्याग करना चाहिए—

जौ, गेहूँ, चावल, मूँग, उर्द, अरहर, चना, मकाई का ग्रहण और शेष अन्न का त्याग।

फल—सेब, संतरा, सरदा, अमरूद, आम, केला, नारियल, सिंघाड़ा, अनार, अंगूर, लीची, खरबूजा, तरबूज आदि।

शाक—पालक, मेथी, मूली, मटर, गोभी, आलू, लौकी, तोरई, टिंडा, परवल, केला, कमल, ककड़ी, इनका ग्रहण, शेष का त्याग।

बैंगन, कोहड़, करेला, अरबी, सरसों का शाक, टमाटर, इनका खासतौर से त्याग।

मसाले—काली मिर्च, सेंधा नमक, लवंग, इलाची, जीरा, धनिया, हल्दी, मेथी, अजवायन, सौंफ, सोंठ, हरड़, पीपल, अदरख, दारचीनी, इनका ग्रहण, शेष का त्याग। राई, सरसों, खटाई, इमली आदि का खासतौर से त्याग। घी, दूध, मक्खन, मलाई साधारणतया खाए जा सकते हैं, अधिक नहीं। अविवाहित युवकों को दूध और मलाई नहीं खाना

चाहिए। दूध वीर्यविरेचक है और मलाई अनावश्यक वीर्य-वर्धक। ये दोनो ही वस्तुएँ काम-वासना उद्दीपन करती हैं।

गुड़, तेल, अचार, मिठाइयाँ, खोंचे की चीजें, बासी अन्न और सब प्रकार का पक्वान त्याग देना चाहिए।

भोजन का समय नियत रहना चाहिए। ब्रह्मचर्य-साधना करनेवाले को २४ घंटे में केवल दो बार भोजन करना चाहिए, यदि वह अविवाहित हो। एक बार दोपहर को ११ बजे के लग-भग, दोबारा संध्या को ६ बजे के लगभग। यदि उसे दूध लेना है, तो भोजन के साथ सबके अंत में ले सकता है।

विवाहित स्त्री-पुरुष शयन करने के समय दूध ले सकते हैं, और वे प्रातःकाल जल-पान में ताजा और कुछ लघु पदार्थ खा सकते हैं।

भोजन के बाद सभी कोई फल खा सकते हैं। लंघन करना, समय-कुसमय भोजन करना अनुचित है। जितनी भूख हो, उससे तृतीयांश भोजन करना उचित है। भर-पेट खाना उचित नहीं। बीच-बीच में थोड़ा जल पिया जा सकता है। भोजन के पीछे अधिक जल पीना चाहिए। नदी या तालाब का साधारण जल पीना उत्तम नहीं है। कुँए या नलों का फ़िल्टर जल ठीक है।

दही का त्याग और छाछ का सेवन लाभकारी है।

चाय और सब प्रकार के मादक द्रव्य त्याग देने उचित हैं।

दैनिक चर्या का संयम

ब्रह्मचर्य-साधन करनेवाले मनुष्य को इस प्रकार अपनी दिन-चर्या बनानी चाहिए—

प्रातःकाल सूर्योदय से प्रथम उठना, तथा सूर्योदय से पूर्व ही शौच जाना। टट्टी साफ़ होनी चाहिए। यथासंभव अन्य व्यक्ति के मल-मूत्र के ऊपर मल-विसर्जन न करना चाहिए। सुभीता हो, तो एकाध मील चलकर जंगल में मल-त्याग करना चाहिए, नहीं तो पाख़ाने में मिट्टी डालकर तब शौच जाना चाहिए।

देर तक मल-त्याग के लिये बैठने की आदत न डालनी चाहिए। वास्तव में क़ब्ज़ अधिक देर बैठने की आदत है, उसे छोड़ देना चाहिए। दुबारा यदि टट्टी जाना पड़े, तो हर्ज नहीं। पर नियत समय पर अवश्य जाना, और उसी क्रिया में समस्त मन और इच्छा-शक्ति लगा देना चाहिए।

आबदस्त अधिक जल से लेना। उँगली से गुदा-द्वार को भीतर तक साफ़ करना, और अच्छी तरह मल को पृथक् कर देना चाहिए। सदैव शीतल जल का उपयोग करना चाहिए।

इसके बाद अच्छी रीति से मुख और दाँतों को शुद्ध करना चाहिए। नित्य दंतधावन करनी चाहिए। सिर और पैरों के तलवों पर प्रतिदिन या सर्दियों में सप्ताह में दो बार और गर्मियों में एक बार ख़ालिस सरसों के तेल की मालिश करके तब शीतल जल से स्नान करना चाहिए।

जहाँ तक बन सके, स्नान बंद मकान में, एकांत में और बिलकुल नंगे होकर करो। नाभि से नीचे का भाग ख़ासतौर से शुद्ध करो। पेड़ू पर, गुप्तेंद्रिय से ऊपर, जहाँ लोम उत्पन्न होते हैं, शीतल पानी का कुछ देर तरड़ा दो। फिर गुप्तेंद्रिय

को भली भाँति जल से धोकर शुद्ध करो। खाल के नीचे जमे मैल को यत्न से पृथक् कर दो। अंडकोषों को मृदु हाथों से या साबुन से भली भाँति मल-रहित कर दो। टाँगों में अच्छी तरह साबुन लगाओ और फिर समस्त अंग में खुरखुरे तौलिए से अच्छी तरह रगड़कर सूखा कर लो। इसके बाद स्वच्छ नारियल का तेल ज़रा-सा हाथ में लेकर टाँगों में, अंडकोषों में, गुप्तेंद्रिय में खाल के नीचे तथा पेड़ू पर मल दो। चूतरों पर भी यह तेल लगा दो, इन अवयवों को भली भाँति सूखा कर लो, गीला न रहने दो।

यदि लँगोट बाँधो, तो उत्तम है। पर वह बहुत कसकर न बाँधा जाय। वह स्वच्छ सफ़ेद रंग के वस्त्र का होना चाहिए। और यदि पसीने से भीग जाय, तो तत्काल बदल देना चाहिए।

स्नान के बाद हल्का व्यायाम करो। यह व्यायाम ऐसा होना चाहिए, जिससे श्वास अधिक न लेना पड़े। यदि तुम श्वास यथासाध्य रोककर दंड कर सकते हो, तो वह उत्तम व्यायाम है। नहीं तो राममूर्ति के व्यायाम अति सुंदर और सरल हैं। इनकी विधि इस प्रकार है—

१—चित लेट जाओ। हाथों को सिर के दोनो ओर ऊपर फैला दो। पैरों को तान दो।

ज़ोर से श्वास लो, और धीरे-धीरे सिर, धड़ और हाथों को बिना हिले उठाओ। सीना ताने रहो, मगर पेट को सिकोड़े जाओ, झुकते चले जाओ, और हाथों से पैर के अँगूठे छूने की

चेष्टा करो मगर ख़बरदार रहो, घुटने न मुड़ें, और सिर हाथों से पीछे न रह जाय। अँगूठे को ज़ोर से खींचो, और श्वास छोड़ दो। अभ्यास करने से यह क्रिया सरलता से हो सकेगी। आठ-दस वार से अधिक मत करो। और, जितनी देर में करोगे, लाभदायक होगी।

२—उसी भाँति लेट जाओ।

दाहना पैर और वायाँ हाथ एक साथ उठाओ, पैर का अँगूठा पकड़ लो, और खींचो, फिर दाहना हाथ और वायाँ पैर उठाओ।

३—पैर फैलाकर वैठ जाओ। पैर ताने रहो। दोनो हाथों की चुटकियों से दोनो अँगूठे पकड़ लो। ख़ूब खींचो। वाईं तरफ़ गर्दन को जितना मोड़ सकते हो, मोड़ो, और श्वास छोड़ दो। इसी प्रकार फिर दाहनी तरफ़ श्वास छोड़ो।

ये व्यायाम अपान-वायु और समान-वायु को ठीक गति में वनाते हैं तथा प्राण-वायु को वश में करते हैं। इससे प्राणा-याम का शीघ्र ही अभ्यास हो जाता है।

इसके वाद प्राणायाम करो।

स्वस्थ होकर पद्मासन से वैठो।

वस्त्र ढीले कर दो।

धीरे-धीरे नाक के रास्ते प्राण-वायु को पिओ। और पिओ, और पिओ, घवराओ नहीं। जव तक वायु को खींचते रहो, गुदा-द्वार को ऊपर खींचो। उसी भाँति खींचे रहो। जव तक वायु का

विसर्जन न करो, वायु को यथासाध्य रोके रहो। हृदय की धड़कन सुनने की चेष्टा करो। जब वह सुनाई देने लगे, हठात् जैसे वमन करते हैं, वायु को बाहर फेंक दो, और ज़रा सुस्ता लो। फिर उसी भाँति करो।

प्रारंभ में पाँच-छः बार से अधिक न करो, और देर तक वायु को रोकने का अभ्यास करो। वायु को ठूँस-ठूँसकर शरीर में भरो, जिससे कोई भी इंद्रिय कुछ विषय न प्राप्त कर सके। यह अभ्यास से होगा।

इसके बाद ज़रा टहलो, और लघु आहार करके वस्त्र पहनो। वस्त्र स्वच्छ, यथासंभव श्वेत रंग के हों। कम-से-कम भीतरी वस्त्र।

दिन में मत सोओ, और रात्रि को ११ बजे के बाद मत जागो। आग मत तापो। यथासंभव नंगे पैर घास पर घूमो। मोज़े कम इस्तेमाल करो। खड़ाऊँ ज़्यादा काम में लाओ। बन सके, तो मृग-चर्म या कुशासन पर कुछ समय बैठा करो।

यथासंभव सिर नंगा रक्खो।

संध्या-समय मत पढ़ो। रात्रि को नेत्रों से कम काम लो।

कभी-कभी तैरने या दौड़ने का अभ्यास रक्खो।

मूत्र, मल, छींक, डकार, अपान, निद्रा आदि के वेगों को मत रोको।

पान-तंबाकू या अन्य व्यसनों का सेवन मत करो।

खूब भ्रमण करो। कुछ समय एकांत-सेवन किया करो।

सदा हवादार जगह में सोओ। चाहे भी जितनी सर्दी हो, कभी मुँह मत ढाँको।

विचार-कल्पना का संयम

विचारों पर तीन कारणों से प्रभाव पड़ता है। एक पुस्तकों से, दूसरे मित्रों से, तीसरे अपनी आत्मा की निर्बलता से।

खराब विचारों को उत्पन्न करनेवाले ग्रंथ भयानक वेश्या के संसर्ग से कम हानिकारक नहीं। एक खराब विचारोंवाले ग्रंथ को देखकर उसे खरीद लेने या हाथ में लेने का लोभ त्यागना आसान है, पर उसे पढ़ना प्रारंभ करके छोड़ना कठिन। इसलिये खरीदने या चुनने के समय जो थोड़ी-सी दुर्बलता या गुदगुदी मन में उत्पन्न होती है कि जरा देखो तो इसमें क्या है, उसे वहीं नष्ट कर दो, और दृढ़ता-पूर्वक उस पुस्तक पर से दृष्टि हटा लो। मन में यह संकल्प कर लो कि हम कदापि मनोरंजन के लिये ग्रंथ न पढ़ेंगे। हम ग्रंथों को ज्ञान की वृद्धि के लिये पढ़ेंगे। वास्तव में ग्रंथ मनोरंजन की वस्तु नहीं, ज्ञान-वृद्धि की वस्तु हैं। जो लोग मनोरंजन के लिये ग्रंथ पढ़ते हैं, वे ही वास्तव में पतित होते हैं। वे ग्रंथकार, जो लोगों के मनोरंजन के लिये ग्रंथों का निर्माण करते हैं, समाज को पतित करने के दोषी हैं।

मनोरंजन की सबसे सुंदर वस्तु जगत् में बच्चे हैं। आपको यदि कभी मनोरंजन करना हो, तो आप बच्चों में जाकर खेलिए, कूदिए, हँसिए, चिल्लाइए, उन्हें खिलौने दीजिए, और उनके प्रिय बनिए।

ग्रंथ विचार-कल्पना को प्रौढ़ बनाते हैं। यद्यपि ऐसे ग्रंथों का देश में अभाव है, जो सरल भाषा और सरल भाव से आत्मा को सदाचार की शिक्षा दें, फिर भी हम इस काम के लिये तुलसी-कृत रामायण की सिफ़ारिश कर सकते हैं कि संसार की सारी पुस्तकों को त्यागकर यदि इस एक ही पुस्तक का नित्य, फ़ुरसत पाने पर, पारायण किया जाय, तो मन सदैव शुद्ध रहेगा। इस अद्भुत महाग्रंथ में मन को विकार-ग्रसित करने-वाली एक भी बात दृष्टिगोचर नहीं होती।

परंतु ग्रंथों से सदाचार और सद्भावना प्राप्त करना ही यथेष्ट नहीं। उनसे विवेक प्राप्त कर नवीन भावना का मन में उदय करना भी बहुत ज़रूरी है। इसलिये ऐसे ग्रंथों को, जो मस्तिष्क को विचारने योग्य विषय दें, अवश्य पढ़ना चाहिए। धीरे-धीरे साहित्य की सूक्ष्म कलाओं में से रस लेने का अभ्यास हो जायगा।

मित्रों के विषय में हमारे विचार बहुत कटु हैं, इसका हमें खेद है। यदि हम यह कहें कि आजकल के मित्र विपत्ति के साथी तो क्या, पाप की ओर खींचकर ले जानेवाले होते हैं, तो अनुचित नहीं। लोग समझते हैं, मित्रों ही में बैठकर उल्टी-सीधी बातें कही जा सकती और बेखटके कुकर्म किए जा सकते हैं। यह बड़ी लज्जा और शोक का विषय है।

हम प्रायः देखते हैं, जो मित्र जितना अधिक घनिष्ठ होता है, उससे उतनी ही अधिक कुत्सित चर्चा होती है। और

जिस पुरुष के अधिक मित्र हैं, उसका संयम में रहना कठिन ही है।

इसलिये जिन पुरुषों को ब्रह्मचर्य-साधना करना है, उन्हें ऐसे लंपट मित्रों से अपने को बचाना चाहिए, और विद्वान्, गंभीर और अपने से श्रेष्ठ पुरुषों को मित्र बनाने की चेष्टा करनी चाहिए, जिससे समय पर उन्हें उनसे सद्विचारों की प्राप्ति हो, और उनको सदुपदेश मिले।

अपनी आत्मा की निर्बलता से बारंबार मनुष्य बुरे विचारों की ही भावना करता है। अच्छी बातें वह सोच ही नहीं सकता। वास्तव में यह आदत है, और अभ्यास से त्यागी जा सकती है, यदि मनुष्य सदैव अपने को धिक्कार दे, और इस बात पर लज्जित हो कि मैं कैसे नीच विचारों में मग्न रहता हूँ, तो वह अवश्य ही उत्तम विचारों का अभ्यास कर सकता है, और फिर धीरे-धीरे उसकी आत्मा उन्नत और बलवान् हो सकती है। ऐसे उदाहरण बहुत हैं, जो अत्यंत नीच और कुकर्मी लोग भी अंत में संत-महात्मा हो गए। उन्होंने निरंतर अभ्यास से अपनी आत्मा की दुर्बलता को दूर किया।

वास्तव में मित्र और ग्रंथ ये दो वस्तुएँ आत्मा को सदैव कमजोर या बलवान् बनाती रहती हैं। आपकी आत्मा चाहे भी जैसी दुर्बल है, यदि आप उत्तम ग्रंथ पढ़ेंगे, उत्तम मित्रों का संसर्ग करेंगे, तो आप में निश्चय ही उत्तम भावनाओं का उदय होगा। परंतु आप चाहे भी जैसे बलवान् आत्मावाले

हैं, यदि आपको नीच मित्रों का संग प्राप्त है, तो आप अवश्य पतित होंगे। कहा भी है—

"तुख्म-तासीर, सोहबत असर।"

बाह्य संसर्ग का संयम

बाह्य संसर्ग के वे दोष हैं, जो नागरिक जीवन में लग जाते हैं। नगर में वेश्याएँ रहती हैं, प्रतिदिन उन पर आपकी दृष्टि पड़ती है, फलतः कभी-कभी आप उनके विषय में सोचेंगे ही। नाटक-सिनेमा, खेल-तमाशे, अड़ोस-पड़ोस की बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जो मन को दूषित कर देती हैं। इन्हें यत्न और सावधानी से प्रारंभ में ही त्याग देना चाहिए।

ब्रह्मचर्य-साधना से पूर्व इतनी तैयारी यदि आप कर लेंगे, तो आप यह देव-दुर्लभ साधन अनायास ही कर लेंगे।

छठा अध्याय

ब्रह्मचर्य-साधन के साधारण नियम

ब्रह्मचर्य-साधन के दस साधारण नियम हैं, जिन्हें बाल, युवा, वृद्ध, प्रौढ़ स्त्री-पुरुषों को यथोचित रीति से विचार कर उसे पालन करना चाहिए।

१. अष्ट प्रकार मैथुन-त्याग—अष्ट प्रकार मैथुन का ज़िक्र हमने संक्षेप से, प्रारंभ के अध्याय में किया है। यहाँ हम विस्तार से वर्णन करेंगे। अष्ट मैथुन ये हैं—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्;
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।

स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्य भाषण, संकल्प, अध्यवसाय और क्रिया-निर्वृत्ति।

स्मरण—बहुत लोगों की आदत होती है कि सदैव स्त्रियों का चिंतन किया करते हैं। जो अपने को शुद्ध विचारोंवाला समझते हैं, वे अपनी ही स्त्री से बेहद प्रेम करने के कारण रास्ते में, यात्रा में, दफ़्तर में सदैव स्त्री का विचार रखते हैं, उनका मन स्त्री में लगा रहता है। जो लंपट हैं, वे पास-पड़ोस, इधर-उधर की जो कोई सुंदर स्त्री उनकी नज़र पड़े, उसी का ध्यान

करते हैं, अपनी कल्पना को उत्तेजित करके उसके अंग-प्रत्यंगों को मानसिक नेत्रों से देखते हैं। इसका फल यह होता है कि उनके ज्ञान-तंतुओं में एक अनावश्यक उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है, जिससे उनका वीर्य अपने स्थान से उष्णता प्राप्त कर च्युत हो जाता है, और ऐसे लोगों को शीघ्रपतन आदि रोग प्रारंभ में लग जाते हैं। ऐसे लोग प्रायः स्त्री-लोलुप होते हैं, और वे कभी अपनी उन्नति नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी मनोवृत्ति और विचार-शक्ति सदैव वहीं पड़ी ठोकर खाया करती है। इसलिये ब्रह्मचर्य की कामना करनेवाले पुरुष को साधारण समयों में दृढ़ता से स्त्रियों के संबंध से अपने विचारों को हटाकर अपने काम और अन्य विचारणीय विषयों में लगा देना चाहिए।

स्मरण रक्खो, बुराई को स्मरण रखना ही अधःपतन कराता है। जिनके विचारों की लड़ी बन जाती है, वे उसमें जकड़कर बँध जाते हैं। वेद में लिखा है—"तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु" अर्थात् मेरा मन शुद्ध विचारोंवाला हो। इसलिये यदि बुरे विचार कभी मन में उदय भी हों, तो उन्हें तत्काल दूर कर देना चाहिए, कदापि मन में न जमने देना चाहिए।

कीर्तन—जैसे विचार मन में उपजते हैं, और जैसी बातें निरंतर विचारी जाती हैं, वैसी ही मनुष्य बातें भी करता है। बहुधा हम देखते हैं, न केवल युवा और युवती स्त्रियाँ, प्रत्युत अधेड़ अवस्था के पुरुष भी मिलने पर काम-चर्चा किया करते हैं।

स्त्रियों में यह बात खासतौर पर पाई जाती है। प्रायः स्त्रियाँ विना विचारे अत्यधिक नग्न काम-वासना-संबंधी गीत निस्संकोच गाया करती हैं, और काम-संबंधी चर्चा तो उनका ऐसा अनिवार्य विषय है कि यदि ज़रा देर भी पेट में रुक जाय, तो मानो उनका पेट ही फट जायगा। बहुधा देखने में आता है कि जहाँ दो दोस्तों की मुलाक़ात हुई कि चली वही चर्चा, जो दोनो के मस्तिष्क और विचारों को अपना ग़ुलाम बना चुकी थी। इसलिये यत्न-पूर्वक ऐसी चर्चाओं में अपने को उदासीन बनाना चाहिए। इस प्रकार की बातचीत भी मन में विकार तथा शरीर के रक्त-प्रवाह में उष्णता पैदा करके वीर्य को निज स्थान से च्युत करती है।

जो मनुष्य मन में काम-संबंधी विचारों एवं भावनाओं को निरंतर रखते हैं, वे प्रथम उस लज्जास्पद विषय की चर्चा अपने अति घनिष्ठ मित्र से करते हैं, और धीरे-धीरे वे अधिक निर्लज्ज हो जाते हैं, और अधिक खुल्लमखुल्ला सबसे ऐसी बातें कहने लगते हैं। ऐसी ही मंडली में शरीक होना उन्हें अच्छा लगता है। जो इन बातों से उदासीन रहते हैं, उनकी वे दिल्लगी उड़ाते हैं। जब कोई नहीं होता, तो गंदे गाने, ग़ज़लें या गीत गुनगुनाया करते हैं। उन गंदे शब्दों को मुँह से उच्चारण करना, जो वास्तव में उनके मन में रमे हुए हैं, उन्हें बड़ा प्रिय प्रतीत होता है, और इससे उन्हें सुख मिलता है।

ऐसे लोग प्रायः अपने दुराचरण या लंपटता के उदाहरण बड़ी डींग के साथ मित्र-मंडली को सुनाया करते हैं।

ऐसे लोगों को इस प्रकार की मंडली में सम्मिलित होने से बचना चाहिए। यदि उनका या उनके किसी मित्र का ऐसे कुकर्म में प्रवृत्त होने के कारण कभी अपमान हुआ हो, तो उसकी तारीख़-मात्र अपने कमरे में टाँग देनी चाहिए, जिससे उसकी उन्हें याद बनी रहे। डायरी में ऐसी घटनाओं का उल्लेख कर रखना चाहिए, और जब वैसी दुश्चिंताओं का तार बँधे, उन्हें पढ़ना चाहिए।

इस मानसिक कुष्ठ-रोग से बचने का एक उपाय यह भी है कि जहाँ इस प्रकार की चर्चा चले, न जाय। कोई मित्र यदि मित्र-मंडली में वैसी चर्चा चलावे, तो उससे कहे, फ़ौरन् उस स्थान से चला जाय, या मित्रों को ही त्याग दे। पवित्र और गंभीर विचार-पूर्ण ग्रंथों का अनुशीलन करे। जितेंद्रिय पुरुषों का सहवास करे। नित्य अपनी दिन-चर्या लिखे, और निर्भीकता से अपनी मानसिक दुर्बलताओं को भी लिखता रहे, और सदैव अपनी भूलों और मूर्खताओं पर पश्चात्ताप करता रहे।

केलि—बहुत लोगों की आदत होती है कि वे स्त्रियों में बैठकर हँसी-मज़ाक़ करते, हँसते और चुहलबाज़ी किया करते हैं। छीना-झपटी या आँखमिचौनी के बहाने उनके अंगों को स्पर्श करते हैं।

इन सब बातों से काम-वासना बढ़ती, अंगों में उत्तेजना उत्पन्न होती तथा वीर्य अपने स्थान से च्युत होता है।

जब कुचिताओं के कारण मनुष्य की नियत भ्रष्ट हो जाती है, और निरंतर उसी प्रकार की बातचीत करने से उसकी आँखों का शील नष्ट हो जाता है, तो मनुष्य को स्त्रियों के पास उठने-बैठने और विषय-वासना-संबंधी बातें करने का चाव हो जाता है। धीरे-धीरे वे स्त्रियों के इस प्रकार अधीन हो जाते हैं कि उनकी उचित-अनुचित सभी आज्ञाएँ अंधों की भाँति स्वीकार करने लगते हैं।

बहुधा पास-पड़ोस की कुमारी कन्या या विधवा इस प्रसंग के बीच में आया करती हैं। अथवा किसी ग़रीब पड़ोसी या मित्र की स्त्री। जिन पुरुषों के मानसिक विचार स्वच्छ नहीं हैं, वे चाहे शाने ऐसे अवसरों पर गिर जाते हैं, पर मनुष्य चाहे भी जैसी गहराई में उतर जाय, उसे अपनी परिस्थिति का ज्ञान तो होता ही है। बुद्धिमान् को चाहिए कि उस ज्ञान से लाभ उठावे, और कुछ दिन के लिये स्थान छोड़ अन्यत्र चला जाय, और कठिन कामों का भार सिर पर ले ले। सारी शक्ति उधर लगा दे, और मन तथा शरीर को सदा काम में जोतकर थका दे। साथ ही व्यायाम करके शरीर से ख़ूब पसीना निकाले।

प्रेक्षण—इसका मतलब है घूराघूरी। यह घूराघूरी की आदत बड़े-बड़े शरीफ़ज़ादों को है। बुड्ढों तक में देखी है। पर, मेलों में, स्नान के घाटों पर और विवाह-शादी के अवसरों पर यह घूराघूरी ख़ूब ही चलती है।

हम यह मानते हैं कि सृष्टि की सुंदरता मन को आकर्षित

करती है। सुंदरता और शृंगार करना या उसे देखना तथा सराहना बुरा नहीं। घर की मा-बहनें भी शृंगार करती हैं, परंतु शृंगार देखना या शृंगार करना ये दोनों यदि काम-वृत्ति के आधार पर हों, तो वे मैथुन में शरीक हैं। सौंदर्य और शृंगार में पवित्र स्नेह और चाव की दृष्टि होना सहृदयता का चिह्न है। परंतु जिन्हें विषय-वासना की चाट लगी है, वे सदैव ही कुत्सित रीति से उसे देखते हैं। जिन्हें ऊँट की-सी गर्दन उठाकर स्त्रियों को घूरने का चस्का पड़ जाता है, वे बार-बार पिटने और गालियाँ खाने पर भी हँसते रहते हैं।

इस कुरुचि से बचने के लिये सबसे प्रथम घर और शरीर की वड़क-भड़क नष्ट कर देना। सादा और स्वच्छ वेश रखना। शुद्ध भावनाएँ मन में रखना। प्रकृति के सौंदर्य की ओर मन लगाना। सिनेमा, मेला, बाजार आदि की अपेक्षा जंगल, वन, नदी आदि की सैर करना। घर में भी प्राकृत चित्र रखना।

गुह्य भाषण—एकांत में स्त्रियों से मिलने की घात लगाना, और अपनी काम-वासना-संबंधी अभिसंधि प्रकट करना। जो पुरुष उपर्युक्त दोषों में आगे बढ़ जाता है, उसके लिये गुह्यभाषण भी एक प्रकार से अनिवार्य हो जाता है। यह अत्यंत जोखिम से परिपूर्ण काम है, और इसमें प्रायः खून-खराबी हो जाती है। यह न भी हो, तो सीधी-सादी पराई स्त्री के मन में लालसा की झूठी आग भड़का कर उन्हें पति और परिवार से अविश्वासिनी बनाना कितना नीच कर्म है।

संकल्प—जब पूर्वोक्त पाँचो प्रवृत्तियाँ जोर पकड़ती हैं, तब अमुक स्त्री से मैं कुकर्म करूँगा, यह संकल्प हो जाता है। उस समय मनुष्य अंधा हो जाता है, और चोरी, ख़ून करना तथा हथेली पर जान रखना उसके लिये साधारण बात हो जाती है। मानो हज़ारों बोतलों का उसे नशा चढ़ा हो। यहाँ तक पहुँचकर मनुष्य यदि सफल होता है, तो पतन और पाप—और यदि निष्फल हुआ, तो क्रोध, हिंसा और उसका राक्षसी परिणाम हो जाता है।

अध्यवसाय—संकल्प के अनुसार चेष्टा करना। इसमें ज्ञान, शील, लज्जा आदि गुण तो अतल-पाताल में चले जाते हैं, और मनुष्य राक्षस होकर उचित-अनुचित सभी कृत्य कर डालता है। पुरुष अपनी पत्नियों को ज़हर पिलाते हैं, और स्त्री अपने पति की छाती में छुरा भोंकती है। पेट के बच्चे को गला घोटकर मार डालती है। यहाँ मृत्यु और जीवन एक पागल का खेल हो जाता है।

क्रिया-निर्वृत्ति—प्राकृत या अप्राकृत किसी भी रीति से वीर्य-पात करना ही क्रिया-निर्वृत्ति है। इसके बाद मनुष्य को होश आता है, विवेक का उदय होता है, पर "अब पछताए होत का, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।"

२. सदाचार का पालन—सदाचार के जो नियम मनु ने बताए हैं, वे इस प्रकार हैं—

मनुष्य को सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि जिसका

सेवन राग-द्वेष-रहित विद्वान् नित्य करें, और जिसका अंतःकरण अनुमोदन करे, वही काम करे। इस संसार में अति कामात्मता और अति निष्कामता भी ठीक नहीं। सदा ज्ञान-योग और कर्मयोग यह सब कामना ही से सिद्ध होता है। काम संकल्प का मूल है, और संकल्प से पुण्य कार्य होते हैं। यम, धर्म, व्रत सब संकल्प से ही होते हैं। निष्काम की कोई क्रिया नहीं है। वेद, स्मृति, सदाचार और अपने अंतःकरण की स्वीकृति, ये चार धर्म हैं। जो अर्थ और काम में आसक्त हैं, उनके लिये धर्म-ज्ञान कहा गया है। विद्वान् पुरुष को चाहिए कि विषयों में जाती हुई इंद्रियों को दौड़ते घोड़े के समान रोककर संयम में रक्खे। इंद्रियों के प्रसंग से अनेक दोषों का प्रकटीकरण होता है, उन्हें दबा रखने ही से सिद्धि-तुष्टि होती है। काम की तृप्ति भोगों से कदापि नहीं होती। घी डालने से अग्नि सदैव बढ़ती है, इसलिये इंद्रियों को वश में करके मन का संयम करके सब अर्थों की उत्तम प्राप्ति करे। सुनकर, छूकर, खाकर, सूँघकर जो मनुष्य न प्रसन्न हो और न ग्लानि करे, वही जितेंद्रिय है।

३. मल, मूत्र, छींक, डकार, जम्हाई, नींद, भूख, प्यास आदि वेगों को कदापि न रोके। समय पर अपना आहार-विहार यथार्थ और संयम में बनाए रहे, परंतु काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मानसिक वेगों को सदा रोकता रहे। इंद्रिय रूपी घोड़ों की लगाम सदैव खिची रक्खे, नहीं तो किसी अँधेरे गड्ढे में ले गिरेंगे।

४. समय पर हितकारी और थोड़ा बोले।

५. शरीर-रक्षा का सदैव ध्यान रक्खे। स्वास्थ्य के नियमों के विपरीत कुछ न करे। सदैव नीरोग रहने की चेष्टा करे।

६. साहस के कर्म जैसे अपनी शक्ति से अधिक बोझ उठाना, बड़ी नदी को तैरना, अपने से बलवान् से लड़ना, अगम्य स्थानों में घुसना आदि न करे।

७. शराब, भंग, चरस, हुक़्क़ा, चाय, काफ़ी आदि न पीवे।

८. पापी, दुराचारी, गर्भहंता, पतित, पागल और देश-द्रोही का संग न करे। सदा मध्यम वृत्ति का होकर चले। अति किसी भी काम में न करे।

९. किसी का पहना वस्त्र न पहने, जूठा न खाय, किसी के बिस्तर पर न बैठे, न सोवे। इससे संसर्गज रोग लग जाते हैं, और दूसरों के चित्त का प्रभाव भी पड़ जाता है।

सातवाँ अध्याय

ब्रह्मचर्य-भंग का प्रकृत भयकाल

युवक के लिये १६ वर्ष की आयु से लेकर २४ वर्ष की आयु तक और युवती के लिये १२ वर्ष की आयु से १८ वर्ष की आयु तक प्रकृत भयकाल है, जिसमें ब्रह्मचर्य-व्रत भंग हो सकता है। युवती और युवा दोनो ही इस आयु के बीच की संधि में अपने जीवन-क्रम को अतिक्रमण करते हैं, अर्थात् वे किशोरावस्था त्यागकर यौवन में पैर रखते हैं। इस काल में यौवन का विकास होने के कारण शरीर के सभी भागों में एक क्रांति-सी मच जाती है, स्वर बदल जाता है, भावनाएँ बदल जाती हैं, अंग बदल जाते हैं। नींद, भूख, रुचि, उत्साह सबमें परिवर्तन हो जाता है।

बालिकाओं में इस समय ऋतु-धर्म होना प्रारंभ होता है, और ऋतु-दर्शन होते ही उनकी छातियाँ उठने लगती हैं। इन दोनो ही कारणों से उनके शरीर में एक विकल आनंद की लहर का उद्गम होता रहता है, और स्वाभाविक रीति से उनका ध्यान जननेंद्रिय की ओर खास तौर पर आकृष्ट होता है। इस समय जननेंद्रिय में एक प्रकार का पतला स्राव होने लगता है। खासकर ऋतु-दर्शन के प्रारंभ के दिनों में उस

स्राव में एक विशेष गदगुदी होती है, जो बालिकाओं का ध्यान हठात् जननेंद्रिय की विशेषताओं की ओर आकृष्ट करती है।

युवक बालकों में इस अवस्था में मूछों के स्थान पर और जननेंद्रिय के ऊपर के भाग पर लोम का उद्गम होता है। पिछली रात्रि को जब मूत्राशय में मूत्र भरा रहता है, विशेष लिंगोद्रेक होता है। इन कारणों से स्वाभाविक मानसिक प्रेरणाओं से भी उनका विशेष ध्यान जननेंद्रिय को बनावटों की ओर आकृष्ट होता है, और वे बारंबार उसकी चिंतना करते हैं।

बालक और बालिकाएँ इस अवस्था में बहुधा समवयस्क बालक-बालिकाओं से धींगा-मुश्ती करना, लपट-झपट करना, चिपटकर सोना, एक दूसरे को नंगा देखना और कभी-कभी जननेंद्रिय-संबंधी बातें करना बहुत पसंद करते हैं। इसमें उन्हें विशेष सुख-प्राप्ति होती है। प्रायः बालक-बालिकाएँ इस आयु में जननेंद्रिय को हाथ से स्पर्श करने में सुख पाते हैं, क्योंकि एक प्रकार के मैल के उत्पन्न हो जाने से, जो उस अंग में एक विशेष प्रकार के प्रवाही स्राव से जम जाता है, मीठी खाज बहुधा हो जाती है, इस कारण उनका उधर ध्यान जाता है। वे उसे मसलते हैं, और इसमें सुख प्राप्त होता है। धीरे-धीरे वे इससे कुटेव सीख लेते हैं।

वास्तव में यह ब्रह्मचर्य-भंग का प्रकृत भयकाल है। इस

काल में नीचे-लिखी बातों की सावधानी माता-पिताओं को प्रारंभ ही से रखनी चाहिए—

१—बालक और बालिकाएँ नित्य ही ताज़े पानी से बहुत अच्छी तरह स्नान करें। उनके गुप्तांग बहुत अच्छी रीति से धोकर स्वच्छ कर दिए जायँ। माता-पिताओं को चाहिए कि इस आयु से पूर्व ही बच्चों को अपने गुप्तांगों को स्नान के समय भली भाँति साफ़ करने की आदत डालें। इस बात का भय न करें कि उन्हें कोई बुरी आदत लग जायगी। क्योंकि यदि यौवन-आगम के पूर्व ही से उन्हें अभ्यास होगा, तो उन्हें पूर्व-कथित भय बहुत कम होगा। सप्ताह में एक-आध बार गुप्तेंद्रियों के भीतरी भाग में ज़रा-सा घी या चमेली का तेल या वेसलीन लगा देने की भी उन्हें आदत डाल देनी चाहिए, जिससे खाज या सुरसुराहट पैदा ही न होने पावे। माता-पिताओं को इस मामले में संकोच या लज्जा करना पाप है।

२—बच्चों को यौवन-आगम से प्रथम ही सोने से पूर्व पेशाब कर लेने की और एक बार फिर २ बजे के लगभग उठकर पेशाब करने की आदत डाल देना चाहिए, जिससे उनके मूत्राशय में पेशाब भरा न रहे। यौवन-आगम के काल में तो अनिवार्य रीति से उन्हें रात्रि को दो बार पेशाब करने को उठा देना चाहिए। हम जानते हैं कि इस विषय में माता-पिता प्रारंभ ही से बड़े अज्ञान रहते हैं। बच्चे प्रायः कपड़ों में पेशाब कर देते हैं, पर

उन्हें इसकी चिंता नहीं रहती। वास्तव में यह बहुत महत्त्व-पूर्ण प्रश्न है।

३—इस बात की कड़ाई से दृष्टि रखनी चाहिए कि इस आयु में बच्चे परस्पर स्पर्श दोष से बचें। ऐसे खेल न खेलें, जिनमें अधिक धींगा-मुश्ती और लिपटा-झिपटी हो। रात्रि को कदापि एक शय्या पर दो बालक न सोने चाहिए, चाहे भाई-भाई या बहन-बहन ही क्यों न हों। न वे नंगे परस्पर देखें। इस अवस्था के कुमार-कुमारियों को सदैव ही खुले में स्नान करना चाहिए।

४—इस बात का ध्यान रक्खो कि वे अनियमित रीति से बारंबार पाख़ाने में तो नहीं जा बैठते, और वहाँ देर तक तो नहीं बैठे रहते। युवकों को यदि जंगल में शौच-क्रिया के लिये ले जाया जाय, तो बहुत अच्छा है। स्वस्थ शरीर हो, तो उन्हें ठीक समय पर शौच जाने के लिये विवश करो।

५—भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र ही रात्रि को सोने के समय दूध पीने की रीति है। बच्चों को माताएँ प्रायः सोते से जगाकर दूध पिलाती हैं, और वे नींद ही में दूध पी जाते हैं। हमारा यह कथन है कि यौवन-आगम के काल में कुमार युवकों-युवतियों को इस प्रकार दूध हरगिज़ न पिलाया जाय। इस प्रकार रात्रि को दूध पीना ब्रह्मचर्य-भंग में सहायक है। दूध वास्तव में जहाँ बहुत-से गुण रखता है, वहाँ वह वीर्य-विरेचक भी है। ख़ासकर सोने के समय पीना। ऐसे बालकों

को भोजन के साथ यथेष्ट दूध दिया जाय, जो ज्यादा न उबाला गया हो। एक-दो उफान आए हों, तथा ज़रा गुनगुना रह गया हो। ऐसे बच्चों को दही भी बहुत कम देना चाहिए। हाँ, ताज़ा छाछ यथेष्ट पिलाना चाहिए। अचार, खटाई, चटनी, चाट, पकौड़ी, मसाले कतई न देने चाहिए। सूखे मेवे और मिठाइयाँ बहुत कम। फल और साधारण भोजन उनकी ग़िज़ा होनी चाहिए।

६—बालक और बालिका दोनो ही को इस काल में भ्रमण और लघु व्यायाम करना अत्यंत आवश्यक है, पर अधिक नहीं। उन्हें सदा प्रसन्न और कार्य में संलग्न रखना। बहुत-सी कथा-कहानी तथा निर्दोष हास्य की चर्चा ख़ासकर सोने के समय करना उचित है। सोने के लिये बहुत गुद्‌गुदा गद्दा नहीं। बिलकुल बंद मकान भी न हो। वे मुँह ढाँपकर न सोएँ। वस्त्र जो वे पहनें, ऐसे हों कि कोई अंग अनुचित रीति से न कसा रहे। न वे अधिक ढीले ही हों।

७—दिन में कदापि न सोवें। न रात्रि को जगें। न वे ख़राब साहित्य पढ़े, न निठल्ले रहें। उन्हें अधिक समय बड़े आदमियों के साथ रहकर व्यतीत करना चाहिए।

आठवाँ अध्याय

बच्चों को प्रारंभ ही से ब्रह्मचर्य-व्रती बनाने की विधि

यह बात ध्यान-पूर्वक समझ लेनी चाहिए कि ब्रह्मचर्य-साधना एक प्रकार का अभ्यास है। यह अभ्यास शारीरिक और मानसिक दोनों ही भाँति का है। और, इसे बाल-काल से ही करने से इसका ठीक फल मिल सकता है।

सातवें अध्याय में हम जिन उपायों की चर्चा कर चुके हैं, उन पर ठीक-ठीक अमल करना चाहिए। ख़ासकर परस्पर स्पर्शास्पर्श और गुप्तेंद्रियों का स्वच्छ रखने की सावधानी रखनी चाहिए।

सबसे भयानक बात, जो बच्चों के चरित्र पर प्रभाव डालती है, माता-पिताओं के साथ एक कमरे में सोना है। बड़े-बड़े शहरों में इस प्रकार के दृश्य प्रायः देखे जाते हैं कि एक ही घर में जवान और वृद्ध सोते हैं, और केवल अंधकार ही उनका पर्दा है। लोग बच्चों को नादान या सोता हुआ समझकर कुचेष्टाएँ करते हैं, परंतु उन पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। उस समय बच्चे यदि समर्थ नहीं होते, तो समर्थ होने पर वे कुचेष्टाएँ करने लगते हैं। ऐसे कुसंस्थानों और दृश्यों से बच्चों को सर्वथा बचाना चाहिए।

स्कूल और स्कूल के मास्टर बच्चों के चरित्र के लिये अतिशय भयानक हैं। इन किराए के टट्टू मास्टरों के ऊपर अपने प्यारे बच्चों की शिक्षा का भार सौंपकर निश्चिंत हो जाते हैं, और वे उन्हें बेंत और गालियों की सहायता से सब कुछ सिखा देते हैं। यह बड़ी ही लज्जा की बात है कि पिता अपने बच्चों को परीक्षा में पास होने के लिये तो इतनी कड़ाई का बंदोबस्त करते हैं, परंतु उनमें सद्गुणों और उच्चता के भावों को उत्पन्न होने की तरफ़ कुछ भी ध्यान नहीं देते।

सत्य भाषण, बड़ों का सम्मान, नम्रता, दया और लज्जा तथा प्रेम का बीज बच्चों में स्वभाव से ही होता है। यदि उन्हें भय दिखाकर साधारण बातों पर झूठ बोलने को लाचार न किया जाय, उनसे निकम्मी ठिठोलियाँ न की जायँ, उन्हें शासन में, किंतु प्रेम-पूर्वक रक्खा जाय, उन्हें रोगियों की सेवा तथा अनाथों से प्रेम और दरिद्रों के प्रति सहानुभूति की शिक्षा दी जाय, तो प्रत्येक बालक एक आदर्श चरित्रवान् बालक बन सकता है।

यह बड़ी घृणा की बात है कि बालकों से दूल्हा-दुलहिन की बातें कही जाती हैं। उनकी गुप्तेंद्रियों के संबंध में हास्य किया जाता है, और कुचेष्टाओं पर माता-पिता हँस देते हैं।

घरों में गंदे भाव-पूर्ण चित्र न रखकर उत्तम महान् पुरुषों के चित्र रखने चाहिए, और समय-समय पर उन चित्रों के चरित्रों

का वर्णन करके उनके हृदयों में उन पुरुषों के गुणों का बीज अंकुरित करना चाहिए। नाच-तमाशे, बाइस्कोप आदि में बच्चों को ले जाना हरगिज़ उचित नहीं है।

ग्यारह वर्ष की आयु में धर्म पर सिर कटानेवाले हक़ीक़त और दीवार में जीवित चुने जानेवाले जोरावर भाई तथा ध्रुव-प्रह्लाद-जैसे वीर पुरुष क्या अब पैदा नहीं हो सकते? अवश्य हो सकते हैं।

छोटे बच्चों को बिगाड़ने में सबसे बड़ा हाथ घर के नौकरों का होता है। इन पर कड़ी नज़र रखनी चाहिए। कहार, धीवर, कोचवान, माली आदि देख-भालकर बड़ी आयुवाले और बाल-बच्चेदार रखने चाहिए। ये लोग पैसे चुराने से अपनी शिक्षा आरंभ करते हैं। बच्चों से पैसा चुरवा-चुरवाकर मिठाई का लालच देते हैं। पीछे उन्हें तरह-तरह से फुसलाकर उनमें हिल-मिल जाते हैं। बहुधा उन्हें अपनी कोठरियों में ले जाते और उन्हें कुत्सित चेष्टा सिखाते हैं। पीछे अप्राकृत व्यवहार करते हैं। ये बालक सदा फिर इनसे डरा करते और इनके अधीन रहते हैं।

इसी श्रेणी की घर में आने-जानेवाली नीच जाति की स्त्रियाँ, कुमारी, विधवा बहू-बेटियों की दूती बनकर बदमाशों का संदेश देती और फुसलाती हैं, और अंत में भगा ले जाती हैं। इन स्त्रियों को बहू-बेटियों से कभी एकांत में बात नहीं करने देना चाहिए। इनके चरित्र की खूब परताल रखना

चाहिए। जवान कन्याओं को स्कूल में भेजने से पूर्व सब बातों पर ख़ूब सावधानी से विचार कर लेना तथा निगरानी करना बहुत आवश्यक है।

कन्याएँ स्वभाव से ही पक्षी की भाँति चपल और प्रसन्न रहने-वाली हुआ करती हैं। स्वच्छ नेत्रों से बिना संकोच हर किसी की ओर देखने लगना पवित्र कौमार्य का एक लक्षण है। कन्या एकाएक सकुचीली, भयभीता और गंभीर हो जाय, तो अवश्य उसके कारणों की जाँच करनी चाहिए। हमजोलियों का भी अभिभावकों को पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। गाने-बजाने में उन्हें कभी मर्यादा से बाहर नहीं निकलने देना चाहिए।

देहातों की अपेक्षा क़स्बों और नगरों में बच्चों के बिगड़ने का अधिक भय रहता है। गाँव के सीधे-सादे लड़के गाँव की पढ़ाई समाप्त करके जब निकट क़स्बे के स्कूलों में पढ़ने आते हैं, तो उन्हें वहाँ कुछ नयापन दिखलाई पड़ता है। अच्छी इमारत, मेज़-कुर्सी, ठीक तराश के कपड़े और चटपटे शहरी साथी और चाट-पानी। प्रथम वे कुछ संकोच से रहते हैं, फिर सबमें मिल जाते हैं। शहर के कुछ लुच्चे लड़के अपना उल्लू साधते हैं। कुछ ठगने या उनसे अप्राकृत व्यभिचार करने के लिये उनसे मीठी-मीठी बातें करते, दोस्ती बताते, उनके लिये ख़र्च करते और उन्हें फाँसकर अपने रंग में रँग देते हैं। ये लड़के शीघ्र ही उनसे मिल जाते और दुर्गुणों में फँस जाते हैं, क्योंकि ये प्रायः भोले होते हैं। इन्हें कुछ भी तजुर्बा नहीं

होता। माता-पिता की तरफ़ से सँभाल भी नहीं की जाती, और कोई हितैषी इनको सावधान भी नहीं करता। बोर्डिंग में रहकर परस्पर प्रीति करने लगते, स्पर्शास्पर्श बढ़ाते, एक शय्या पर सोते, परस्पर छेड़ते और अंत में अप्राकृत दुर्व्यसनों में फँस जाते हैं।

यदि एकाएक किसी लड़के के चेहरे की चमक मारी जाय, आवाज खरखरी और भारी हो जाय, उसमें भीरुता और एकांत-प्रियता आ जाय, स्फूर्ति और आनंदमय मस्ती नेत्रों में न रहे, प्रातःकाल देर से उठने लगे, पाखाने में देर तक बैठा रहे, स्नान और शरीर-शुद्धि में लापरवाह हो जाय, पढ़ने में फिसड्डी हो जाय, तो समझ लीजिए कि वह दुर्व्यसनों में फँस गया है, और अवश्य वीर्य फेंकने लगा है।

माता-पिता को उचित है कि उसकी शिक्षा बंद करके उसे किसानी या किसी परिश्रम के धंधे में लगा दें।

नवाँ अध्याय

यौवन-काल में ब्रह्मचर्य

हम यह प्रथम कह आए हैं कि यौवन-आगम ब्रह्मचर्य-भंग का प्रकृत भयकाल है। उस संबंध में हमने ख़ास-ख़ास साव-धानियाँ भी बता दी हैं। इस अध्याय में हम इस बात पर प्रकाश डालना चाहते हैं कि उस प्रकृत भयकाल को वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से अधिक प्रश्रय मिलता है।

देहाती और कुपढ़ युवकों की अपेक्षा शिक्षित और ख़ासकर उच्च शिक्षित युवक ज्यादा ब्रह्मचर्य भंग करते हैं। इसका कारण उनकी शिक्षा-प्रणाली और उस काल में रहन-सहन का ढंग तथा शिक्षा का विषय है।

हम पीछे बता आए हैं कि प्राचीन शिक्षा-प्रणाली का ढंग कैसा सुंदर, किंतु कठोर था। वही कठोरता उस भयकाल से युवक को रक्षित रखती थी। वह एकांतवास, तपश्चर्या, कठार नियम जब तक पालन न किए जायँ, दुर्दम्य इंद्रियाँ संयम में रहना कठिन है।

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में न केवल रहन-सहन के मृदुल और सुखकर सुबीते हैं, प्रत्युत उनके पाठ्य विषय भी उनके चरित्र के लिये भयानक हैं। इन सबके साथ ख़तरनाक बात

कॉलेज के होस्टलों में कुमार और विवाहित विद्यार्थियों का एकत्र एकाकी रहना है।

इन सब बातों का परिणाम युवकों के ब्रह्मचर्य-व्रत के विरुद्ध होता है। कॉलेज के होस्टलों में सुंदर सजे कमरे, इत्र-फुलेल, तैल शीशी, कंघा, माँग-शृंगार आदि अंग-विन्यास एक प्रकार से शिक्षा के अंगों में सम्मिलित हैं। साइकिल की सवारी और भी घातक प्रभाव डालती है। साइकिल पर बैठने से ठीक वीर्यवाहिनी नस दबती है, और उसका जननेंद्रिय की रक्षा पर खास कुप्रभाव पड़ता है।

कॉलेजों के पाठ्य विषयों में जो सरस साहित्य होता है, उसमें प्रेम और शृंगार की पूर्ण मात्रा होती है, और अनायास ही यौवन के विकास-काल में वे कथानक और काव्य युवकों के मन में चाह और गुदगुदी उत्पन्न कर देते हैं। वह फिर उनके परस्पर की चर्चा, व्यंग्य और विनोद का विषय बन जाता है। प्रथम वे किसी वयस्क मित्र को उसी भाषा और भावों में प्रेम-पत्र लिखते हैं, फिर ज़रा-सा भी अवकाश पाने पर किसी भी स्त्री से, यदि वह समझ सके तो, प्रेम-पत्रों का प्रवाह जारी हो जाता है।

जो विवाहित होते हैं, उनमें बहुत-से उस विवाह से असंतुष्ट और लज्जित हुआ करते हैं, क्योंकि वह उनका विवाह उनकी रुचि और इच्छा के विपरीत, माता-पिता के रुचि और इच्छा-नुसार हुआ होता है। वह शील और लज्जा से अवनत बालिका

उनकी उपन्यास की अँगरेजो नायिका से ठीक विपरीत होती है। प्रायः वे उससे प्रेम नहीं करते, और और अप्राकृत या व्यभिचार में फँसते हैं। हम बहुत-से युवकों को इसी भाँति नष्ट होते हुए देखते हैं।

दुःख की बात तो यह है कि उन्हें कॉलेजों में शरीर-शास्त्र और आरोग्य-शास्त्र की कहीं भी शिक्षा नहीं दी जाती। हमने कहीं भी नहीं सुना कि किसी कॉलेज के प्रोफ़ेसर ने कभी किसी छात्र को ब्रह्मचर्य पर कुछ उपदेश दिया हो। कॉलेज में जो नामर्द क़वायदें, खेल और इसी प्रकार के व्यायाम सिखाए जाते हैं, वे नगण्य हैं।

यह तो स्पष्ट बात है कि छात्रगण स्कूलों ही के जीवन से ब्रह्मचर्य के महत्त्व को नहीं समझते, और वीर्य-पात करना शुरू कर देते हैं। माता-पिता, संरक्षक और अध्यापक कोई भी इस विषय में न उन्हें सावधान करता, और न सदुपदेश देता है। इसका फल स्पष्ट यह होता है कि अपक्वावस्था में वीर्य-पात करके वे क्षीण-वीर्य हो जाते हैं, और यौवन के ठीक विकास-काल में फीके, निस्तेज और रोगी बन जाते हैं। पीछे जब युवती भार्या से विवाह होता है, तब उसके साथ वह पूर्ण संभोग-सुख न भोगकर चिंतित, दुखी बने रहते हैं, और उनकी गृहस्थी विषमय बन जाती है। अंत में वे जीवन-भर वैद्यों-डॉक्टरों, जंत्र-मंत्र आदि में भटकते रहते हैं। क्या यह किसी भी पुरुष के लिये दुर्भाग्य और अफ़सोस की बात नहीं।

यौवन-काल में ब्रह्मचर्य की जो रक्षा करते हैं, वे लोहे के समान ठोस और परम ज्ञानी एवं दृढ़ात्मा, दीर्घजीवी होते हैं। वे सब कुछ कर सकते हैं। ईसाइयों की धर्म-पुस्तक बाइबिल में साम्सन की वीरता का बहुत उल्लेख है, पर जब वह मृगनैनियों के चंचल नेत्रों का शिकार हो गया, तो उसकी वीरता हवा हो गई।

जीवन की मध्यावस्था युवावस्था है, और यह सत्य है कि वह संसार-सुख-भोग का समय है, परंतु जिस प्रकार बड़े-बड़े रईस, सेठ लोग उत्तम पदार्थ घर में भरे रहने पर भी पाचन-शक्ति के दोष से तृप्त होकर नहीं खा पाते हैं, उसी प्रकार जो इंद्रियों के दास हैं, वे तृप्त होकर भोगों को नहीं भोग सकते हैं। भोगों को पूर्ण क्षमता से भोगने के लिये मनुष्य को संयम और शक्ति-संचय ही सर्वोपरि मार्ग है।

युवावस्था में ब्रह्मचर्य-सेवन के नियम इस प्रकार हैं—

अविवाहितों के लिये—

१—यदि तुम स्कूल-कॉलेज के छात्र हो, तो नियमित रीति से प्रातःकाल अति शीघ्र उठकर कम-से-कम ३-४ मील का तेज भ्रमण करो। नित्य-कर्म से प्रथम ही निबट लो। फिर स्वल्प जल-पान कर एक बार समस्त पाठ्य विषय को विचार लो, और फिर भोजन करके कॉलेज जाओ। प्रातःकाल उठने का समय अपने कॉलेज जाने के समय से ५ घंटे पूर्व का अवश्य रक्खो। आध घंटे में नित्यकर्म करो, और डेढ़ घंटा भ्रमण में लगाओ। २ घंटे पढ़ो, और १ घंटा में भोजन करके कॉलेज चल दो।

भ्रमण के समय झूम-झूमकर नज़ाकत से न चलो। न ढीली चुनी हुई धोती पहनकर निकलो। ज्यादा वस्त्र न पहनो, बल्कि खूब तेज़ चलो, जिस भाँति चीता जंगल में झपटकर चलता है। सीना उभारे रहो, मुख से साँस न लो। एक-सी चाल चले जाओ। यार-दोस्तों को साथ मत लो। बातें मत करो, तीर की भाँति जाओ, और उसी भाँति लौट आओ। आकर दूध, मुरब्बा, बिसकुट या थोड़ा फलाहार करो, और तब पढ़ने बैठ जाओ। एकाग्र मन से सब विषयों पर, जो आज कॉलेज में पढ़ने हैं, दृष्टि डाल जाओ।

दो पहर के भोजन में एक घंटा लगा दो। खूब चबाकर धीरे-धीरे खाओ। बीच-बीच में थोड़ा जल पिओ। अचार-मसाले मत खाओ। दूध, छाछ इस अवसर पर लो। भोजन के बाद थोड़े कच्चे मटर, चना, गाजर, मूली, अदरख आदि चीजें खूब चबाकर खाओ, और फिर बहुत अच्छी तरह मुँह शुद्ध करके कपड़े पहन कॉलेज चल दो।

२—प्रत्येक कार्य नियत समय पर करो। ज्यादा दोस्त मत बनाओ। गप्पें उड़ाने या सुनने की आदत मत डालो। ज्यादा तकल्लुफ़ मत करो। हँसो, तो खूब खिलखिलाकर हँसो, पर बेहूदे ढंग से नहीं। या तो किसी से बिलकुल बात न करो; करो तो खुलकर करो। मिन-मिन करके बोलना, व्यर्थ संकोचित रहना बुरा है।

३—कॉलेज में समझो कि एक अध्यापक ही जगत् में

ज़िंदा है, शेष सब मरे हुए हैं। उसके मुख और वक्तव्य पर सब ध्यान लगा दो। चेष्टा करो कि जो कुछ वह कह रहा है, तुम उसे उसी समय सीख रहे हो। निश्शंक और प्रफुल्लित रहो।

४—कॉलेज से लौटकर, यदि समय हो, तो पढ़ो-लिखो—एक मन होकर शांत भाव से। ५ बजे पढ़ना बंद कर दो, और ८ बजे तक व्यायाम, खेल-कूद, गप-शप, बातचीत, भ्रमण, मित्र-मंडली का सहयोग तथा भोजन आदि करो। यदि कोई खेल पसंद करते हो, तो मर्दाने खेल पसंद करो। फ़ुटबाल और जमनास्टिक सबसे उत्तम है।

५—८ से १० तक, एक मन होकर, अध्ययन करो, और १० बजे अवश्य सो जाओ। सोने के समय मन को शुद्ध कर लो। शीतल जल एक ग्लास पियो। पैर ज़रा गीले कर लो। यथासंभव पूर्व-पश्चिम सोया करो।

६—ऋतु-परिवर्तन के साथ अपने कार्य-विधान में अंतर कर दो, पर व्यवस्था यही रहने दो।

७—मल-मूत्र के वेग को कभी मत रोको। यथासंभव खोंचे की चीजें कम खाओ। खाने में सीमा-संयम और व्यवस्था रक्खो।

विवाहितों के लिये—

१—सदैव स्त्री-पुरुष पृथक्-पृथक् शय्या पर शयन करो। यदि संतान हो गई है, तो बच्चे और माता को पृथक् कमरा सोने को दो।

२— भोजन और शयन का ठीक समय नियत करो। प्रातः-काल बहुत जल्द उठकर, यदि संभव हो, तो सपत्नीक भ्रमण के लिये जाओ।

३—मिर्च-मसाले, अचार और फ़ालतू चीजें बहुत कम सेवन करो। अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ न खाकर साधारण भोजन का अभ्यास करो, और कभी ठूँस-ठूँसकर न खाओ। भोजन के बाद ज़रा टहलो, और प्रसन्न रहो।

४—ऋतुकाल में पत्नी से सब नियम व्यवस्था से कराने का ध्यान रक्खो। वह किसी को छुए नहीं, स्नान न करे, हवा-खोरी न करे, परिश्रम न करे, तेल न लगावे, हँसे नहीं, शांति और विश्राम से बैठे। शुद्ध, सात्त्विक भोजन करे। ऋतुस्नान के बाद जब दोनो प्रसन्न हों, और दोनो में पूर्ण प्रेम हो, तब गर्भाधान-विधि की क्रिया करे।

५—गर्भ रहने पर गर्भवती से संसर्ग न करे। उसे वीरों, विद्वानों के चरित्र सुनावे, प्रसन्न रक्खे, लघु और उत्तम पुष्टिकर भोजन दे। उत्तम पुरुषों के सुंदर चित्र दिखावे, सुंदर बच्चों के चित्र कमरे में रक्खे। उसे कभी रोने या दुखी न होने दे।

६—प्रसव के बाद भी जब तक बालक दूध पीवे, प्रसंग न करे। यह कहा जा सकता है कि ये नियम बहुत कठोर हैं, पर हमारा कहना यह है कि जगत् में कोई ऐसा नियम नहीं, जो मनुष्य आसानी से न कर सके। वास्तव में मनुष्य मन में जितनी दुर्बलता रक्खेगा, उतना ही कायर बनेगा। यदि थोड़ी

भी दृढ़ता और आत्मिक बल मन में हो, तो ये नियम बड़ी आसानी से पाले जा सकते हैं, और इससे पति-पत्नी में स्नेह-भाव की वृद्धि होती है।

विधुरों के लिये—

१—यदि तुम्हारे मन में मृत पत्नी की स्मृति-वेदना है, और तुम यदि कुछ दिन पवित्र स्नेह की भावना में—जिसमें इंद्रिय की वासना न हो—उसके नाम पर कुछ काल या दीर्घकाल अथवा जीवन-भर ब्रह्मचर्य-पूर्वक काट सकते हो, तो तुम्हारे लिये यह अत्यंत प्रशंसनीय है। इससे तुम्हारे हृदय में उदारता, विश्व-प्रेम, गंभीरता, मनुष्यत्व और तेज आएगा, और तुम प्रतिष्ठित व्यक्ति बन सकोगे।

२—पर जब देखो कि संयम असंभव है, तो तत्काल विवाह कर लो। मन में इंद्रिय-वासना और लोक-भय से विवाह न करना—चरित्र और शरीर दोनो के लिये खतरनाक है। इससे तुम्हारे जीवन के पतित होने या रोगी होने का भय है। आयु तो अवश्य ही अल्प हो जायगी।

३—नव-विवाहित पत्नी की आयु की विषमता का ध्यान करो, और धीरज और संयम से मर्यादा का व्यतिक्रम न करो। यह संभव है, शोक के वेग को मनुष्य अन्य वासनाओं से भुलाने का प्रयत्न करता है, पर यदि ब्रह्मचर्य तुम्हें प्रिय है, तो स्मरण रक्खो कि अष्टविध मैथुन की भावना से बचने के लिये ही तुमने विवाह किया है।

विधवा युवती के लिये—

जो नियम विधुर पुरुष के लिये हैं, वही विधवा के लिये भी हैं। यहाँ हम इस बात को स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि सर्वसाधारण के लिये युवावस्था में विना स्त्री या विना पुरुष के रहना भयानक है। ऐसे पुरुष-स्त्री निन्यानवे प्रतिशत मानसिक व्यभिचार में फँसे रहते हैं, जो जीवन और स्वास्थ्य दोनो के लिये प्रकट व्यभिचार से अधिक भयानक है। इसलिये हमारी खुली राय है कि जब तक इंद्रियों पर पूर्ण विजय न हो, तब तक लोक-लाज या दंभ के कारण किसी युवा युवती को विधवा या विधुर होने पर एकाकी न रहकर विवाह कर लेना चाहिए।

विधवा को कुमार से विवाह करने तथा विधुर को कुमारी से विवाह करने पर भी ब्रह्मचर्य-व्रत भंग होने का भय है। क्योंकि ऐसी अवस्था में दोनो की स्थिति विपरीत होती है। और मोह की अधिकता से संयम नहीं रहता। फिर आयु की विषमता भी इसमें बड़ी बाधक है।

ऐसी अवस्था में निस्संकोच भाव से विधवा और विधुर समान स्वभाव होने पर परस्पर विवाह करें। ऐसा करने पर ही वे मानसिक व्यभिचारों से बच सकेंगे, तथा संयम करना उनके लिये सहज होगा।

दसवाँ अध्याय

गृहस्थ-जीवन में ब्रह्मचर्य

साधारण बुद्धिवाले पुरुष यह समझते हैं कि ब्रह्मचर्य का काल विवाह के प्रथम समाप्त हो जाता है। विवाह हो चुकने पर फिर यथेष्ट विहार कर सकते हैं। हम ऐसे बहुत-से पुरुषों को जानते हैं, जिनका चरित्र विवाह के पूर्व बहुत ही संयम-पूर्ण रहा, परंतु विवाह होने के पीछे उनकी अत्यंत दुर्दशा हो गई, और वे बुरी तरह स्त्री-संसर्ग में पतित हो गए।

यदि सच पूछा जाय, तो ब्रह्मचर्य का महत्त्व-पूर्ण जीवन गृहस्थ-जीवन ही है। यदि गृहस्थ-जीवन में स्त्री-पुरुष ब्रह्मचारी नहीं रह सकते, तो समझ लीजिए, वे जीवन में ब्रह्मचर्य-पालन का आनंद-लाभ नहीं कर सकते।

गृहस्थाश्रम के ब्रह्मचर्य का नियम शास्त्रकार इस भाँति बताते हैं—

"ऋतुकालाभिगमनं ब्रह्मचर्यमिवोच्यते।"

अर्थात् ऋतुकाल में अभिगमन करना ही ब्रह्मचर्य है।

यदि आप पशु-पक्षियों के स्वाभाविक जीवनों को देखें, तो आपको पता लगेगा कि वास्तव में सभी प्राणी ऋतुकाल ही में स्त्री-संसर्ग करते हैं, और इसका प्रत्यक्ष फल यह है

कि वे रोग और अकाल मृत्यु से बच जाते हैं, और प्रजनन-काल में उन्हें कुछ वेदना भी नहीं होती।

वास्तव में गृहस्थाश्रम का उद्देश्य प्रजा-उत्पत्ति है, स्वादेंद्रिय को स्वेच्छाचार से तृप्त करना नहीं। प्राचीन ग्रंथकार लिखते हैं—

सन्तानार्थैव मैथुनम् ऋतौ भार्यामुपेयात् ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्।

अर्थात् संतान के लिये मैथुन करे। ऋतुकाल में ही स्त्री-सेवन करे। इस प्रकार करने से वह ब्रह्मचारी रहता है। विवाह के उद्देश्यों में ग्रंथकार लिखते हैं—

यस्त्वया धर्मश्चरितव्यः सोऽनयासह ; धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरतव्या।

अर्थात् जो कुछ तुझे धर्म-कृत्य करना है, इसके साथ कर। धर्माचरण और कामाचरण में अति न करना।

और उसे कहना पड़ता है—

नातिचरामि, नातिचरामि, नातिचरामि।

अर्थात् मैं कभी अति आचरण न करूँगा।

मनुस्मृति में लिखा है—

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।

अर्थात् व्यभिचार से पति की पत्नी निंदित होती है।

जो लोग यह समझते हैं कि स्त्री बच्चे पैदा करने की मशीन और उनकी विषय-वासना का साधन है, वे भूलते हैं। वास्तव में स्त्री का महत्त्व असाधारण है। प्राचीन ग्रंथकार लिखते हैं—

अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा ;
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः।
भार्यावन्तः क्रियावन्तः सभार्याः क्रियमेधिनः ;
भार्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियान्विताः।
सखायः प्रविविक्तेषु भवन्त्येताः प्रियंवदाः ;
पितरो धर्मकार्येषु भवन्त्यार्तस्य मातरः ।
स्त्रियान्तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ;
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि ;
तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनांश्च सतीषु च।

स्त्री मनुष्य का आधा अंग है, और वह उसकी सर्वश्रेष्ठ मित्र है । स्त्री धर्म, अर्थ और काम की मूल है, वही मोक्ष की दाता भी है। जिनके स्त्री है, वे क्रियावान् हैं, वे ही गृहस्थ हैं, वे ही सुखी हैं, वे ही संपन्न हैं। स्त्री एकांत में मित्र, धर्म-कार्य में पिता, दुख में माता और सर्वत्र उत्तम सहायक है । यदि वे प्रसन्न हैं, तो सब कुछ सुखदायी है, यदि वे प्रसन्न नहीं हैं, तो कुछ भी सुख नहीं। पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं, वे सब सती स्त्री के चरणों में हैं। और सब देवतों और मुनियों का तेज भी स्त्री के सत में है। इन गंभीर बातों से आप जान सकते हैं कि वास्तव में स्त्रियों का महत्त्व कितना है, और वे केवल पुरुषों की भोग-सामग्री ही नहीं हैं।

प्राचीन काल में ऐसा नियम न था, जैसा आज है,

और न स्त्रियाँ अपनी अबोधावस्था में-पुरुषों की दासी ही बनाई जाती थीं। बहुत-सी स्त्रियाँ जन्म-भर ब्रह्मचारिणी रहती थीं।

ब्रह्मचारिणी घोषा कक्षिवान् मुनि की कन्या और उषिज ऋषि की पोती थीं। ऋग्वेद के दशम मंडल की वे ऋषि थीं। उनका कथन था—

जो पुरुष स्त्री की रक्षा करे, उससे प्रेम करे, उससे संतान उत्पन्न करे, उसे यज्ञ में भाग दे, पितृ-यज्ञ में साथ ले, वह ब्रह्मचारिणी का पति होने योग्य है।

ब्रह्मचारिणी गोधा और सूर्या भी इसी प्रकार की ऋषि-पद की अधिकारिणी थीं, और उनका चरित्र और ज्ञान बहुत उच्च था।

सावित्री, दमयंती और सुलोचना के नाम जग ज़ाहिर हैं। इनके ब्रह्मचर्य और पतिव्रत-धर्म के अमोघ प्रभाव अमर हैं, और मनुष्य-जाति के सामने आदर्श हैं।

सुदक्षिणा, जो महाराज दिलीप की पत्नी और दिग्विजयी रघु की माता थीं, ख़ासतौर से वशिष्ट के आश्रम में पुत्र-प्राप्ति के लिये ब्रह्मचर्य से रही थीं।

सुकन्या, विपुला, धारिणी आदि स्त्रियों के नाम भी ऐसे ही पवित्र और महत्त्व-पूर्ण हैं।

सरस्वतीदेवी, जो वाणी की देवी है, ब्रह्मचर्य के बल पर ही इस श्रेष्ठ पदवी को प्राप्त हुई। विद्या और ब्रह्मचर्य ही इनका महत्त्व था। वेदवती, पार्वती और सीता के तप,

त्याग तथा पवित्र चरित्र भी संसार-भर की स्त्रियों के लिये आदर्श चरित्र माने जायँगे। देवहूति के समान ब्रह्मचारिणी स्त्री कौन है।

खेद है, पुरुषों के स्वार्थ और अविद्या के कारण स्त्री-जाति पतन के गंभीर गढ़े में गिर गई है। उसका जीवन, स्वास्थ्य, पद और सम्मान एक जीवित पशु से अधिक नहीं रह गया। हज़ारों वर्ष से पुरुषों ने उस पर अत्याचार किया है, और उसे अपनी वासना की दासी बनाया है, और आज न केवल भारतवर्ष में, प्रत्युत जहाँ सभ्य-असभ्य देश में जाइए, स्त्री को पुरुषों की वासना की दासी पाइएगा।

विवाहित स्त्री-पुरुषों को ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन के लिये इन नियमों का नित्य दृढ़ता से पालन करना चाहिए—

१—कभी एक शय्या पर शयन न करो। पृथक्-पृथक् सोओ।

२—यदि संतान हो गई है, तो माता और संतान पृथक् कमरे में सोवें, और पति पृथक् कमरे में।

३—शयन से प्रथम रामायण या अन्य किसी सुंदर पुस्तक का पाठ करके स्त्री को सुनाओ, या कुछ नित्य पढ़ाओ, जिससे चित्त की वृत्ति शुद्ध रहे।

४—सदैव ही गंदे ठट्ठे न करो। शुद्ध परिहास करो।

५—प्रातःकाल नित्य स्त्री-पुरुष वायु-सेवन को निकलो, तथा दोनो साथ संध्या-वंदन करो।

६—भड़कीले वस्त्रादि नित्य न पहनो।

७—सदैव ताक़त की दवा न खाओ। गर्भाधान के लिये परेशान मत हो। शांति, धैर्य और संतोष से गृहस्थ-जीवन को सुखी करो।

८—परस्पर कलह मत करो, प्रेम-पूर्वक रहो। ऋतुकाल का महत्त्व समझो। विवेक और अभ्यास से इंद्रियों का दमन करो, और नियमित जीवन का अभ्यास करो।

९—यदि स्त्री गर्भिणी हो, तो उसके मन में भी काम-वासनाएँ न आने दो। अपने विचार भी शुद्ध रक्खो।

१०—नित्य स्नान करो, और ताज़ा, हल्का, सात्त्विक भोजन करो।



ग्यारहवाँ अध्याय

अधेड़ अवस्था में ब्रह्मचर्य-सेवन

प्राचीन हिंदू-समाज की रीति यह थी कि अधेड़ अवस्था में चाहे पुरुष सपत्नीक हो या विपत्नीक, उसे ब्रह्मचर्य-व्रत से रहना पड़ता था। उसके लिये पृथक् वानप्रस्थ आश्रम का विधान था। मनुष्य कहते हैं—

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवद् स्नातको द्विजः ;
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ।
गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ;
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ।
संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् ;
पुत्रेषु भार्यां निःक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव च ।
अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम् ;
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ।
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा ;
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ।

इस प्रकार गृहाश्रम में रहकर ब्रह्मचारी इंद्रियों को जीतता हुआ वन में वास करे। जब गृहस्थ देखे कि उसके सिर के बाल सफ़ेद हो गए हैं, और त्वचा ढीली हो गई है, तथा पुत्र के

पुत्र हो गया है, तब वन में जाकर बसे। ग्राम के सब आहार-विहार त्याग दे। स्त्री को पुत्र के पास रक्खे, या साथ वन में ले जाकर बसे। अग्निहोत्र क्रिया करे, और मुनियों के अन्न, फल-फूल खाकर निर्वाह करे। मनु कहते हैं—

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ;
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः।
अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः ;
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः।

उत्तम ग्रंथों का मनन करे, सब प्राणियों पर दया-भाव रक्खे, जितात्मा, सबका मित्र और दाता बने। शरीर-सुख का विशेष ध्यान न करे। ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करे, और धरती पर शयन करे। अपनी वस्तुओं पर विशेष ममता न रक्खे।

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः ;
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्राऽमृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा।

(मुंडकोपनिषद्)

जो शांत विद्वान् लोग वन में तप, धर्मानुष्ठान और सत्य की श्रद्धा करके भिक्षाचरण करते हुए जंगल में बसते हैं, वे जहाँ नाश-रहित पूर्ण पुरुष हानि-लाभ-रहित परमात्मा है, वहाँ निर्मल होकर प्राण-द्वार से उस परमात्मा को प्राप्त होकर आनंदित हो जाते हैं।

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेद् ज्ञान आत्मनि ;
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि।

(कठोपनिषद्)

बुद्धिमान् वाणी और मन को अधर्म से हटाकर धर्म में लगावे, और उस ज्ञान (स्वात्मा) को परमात्मा में लगावे, उस विज्ञान को शांत स्वरूप आत्मा में लगावे।

इसमें संदेह नहीं कि ये प्राचीन नियम बहुत सुंदर थे। अब भी जब मनुष्य का काम करते-करते शरीर और मन थक जाता है, तो वह वन के एकांत स्थल में ही अपना मनोरंजन करता है। परंतु केवल विश्राम और मनोरंजन ही यथेष्ट नहीं है, उसे लोक-सेवा का भी समय मिलना चाहिए। वह स्वाध्याय और लोक-सेवा करे।

इस अवस्था में दीर्घजीवन और स्वास्थ्य के लिये ब्रह्मचर्य-साधन बहुत आवश्यक है।

यद्यपि आजकल प्राचीन काल के समान वनवासी होकर कठिन नियमों का पालना संभव नहीं, परंतु घर में रहकर भी बहुत कुछ जीवन-क्रम ठीक किया जा सकता है। इस संबंध में ये नियम पालन किए जाने चाहिए—

१—दृढ़ता-पूर्वक पति-पत्नी परस्पर विशुद्ध संबंध स्थापित कर लेने का प्रण करें। और यत्न से उसका पालन भी करें। थोड़े ही अध्यवसाय और यत्न से यह नियम पालन किया जा सकता है। इस प्रकार के स्त्री-पुरुषों को अपना आहार-विहार भी परिवर्तित कर लेना चाहिए। दूध और फलों का सेवन अधिक तथा अन्न का भोजन कम करना चाहिए। भोजन की मात्रा भी कम कर देनी चाहिए। पति-पत्नी को पृथक्-पृथक् कमरों में

शयन करना चाहिए। यदि शिष्यगण भी साथ हों, तो पुरुष-स्त्री दोनो को पृथक्-पृथक् शिष्य-शिष्याओं के साथ सोना चाहिए।

२—दोनो को अपनी-अपनी शिक्षा और योग्यता के अनुसार रात्रि के पिछले पहर में आलस्य त्यागकर उठ खड़ा होना चाहिए, और किसी उत्तम ग्रंथ का मनन करना चाहिए। यदि संभव हो, तो पति पत्नी को पढ़ाता रहे। अथवा मौखिक रीति से विविध विषयों पर बातचीत, चर्चा करते रहना चाहिए।

३—दोनो को समाज की सेवा और कार्यों में अधिकाधिक भाग लेना चाहिए, और हर समय परोपकार के कार्यों में संलग्न रहना चाहिए।

४—नित्य स्नान, ईश्वर-स्तुति आदि करना तथा प्रफुल्ल रहना चाहिए। नित्य लघु व्यायाम और भ्रमण करते रहना चाहिए, जिससे शरीर हल्का रहे।

यदि पुरुष या स्त्री विधुर या विधवा है, तो अधिक आसानी से उपर्युक्त नियमों का पालन किया जा सकता है। इन सब बातों के सिवा अभ्यास और शिक्षा ही मनुष्य को ठीक-ठीक रख सकते हैं।

बारहवाँ अध्याय

वृद्धावस्था का ब्रह्मचर्य

बहुत लोग जानते हैं कि वृद्धावस्था में जब इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, और अंग का बल क्षय हो जाता है, तब आप ही काम-वासना भी शांत हो जाती हैं। परंतु वास्तव में यह बात सत्य नहीं है। ज्यों-ज्यों इंद्रियाँ शिथिल होती हैं, मन चंचल और बेलगाम हो जाता है, और जब इंद्रियाँ तृप्त होकर भोगों को नहीं भोग सकतीं, तब मन और भी विषयों में लालायित होता है। इस लालसा को 'बुड्भस' कहते हैं।

बड़े-बड़े राजाओं और रईसों एवं नव्वाबों की वृद्धावस्था की विषय-वासना-संबंधी लालसा की बीभत्स कहानियाँ बहुत लोग जानते हैं, उनके उल्लेख की आवश्यकता नहीं, परंतु सर्वसाधारण में भी यह बात प्रसिद्ध है कि वृद्धावस्था में मनुष्य आराम करने, खाने-पीने और दूसरी प्रवृत्तियों में बहुत ही आसक्त हो जाता है। इस प्रकार मन से विषयों में आसक्त होना और इंद्रियों द्वारा वासना की तृप्ति न होना, ये दो काम प्राणों के घातक हैं। ऐसे लोग वृद्धावस्था के प्रथम चरण में ही हार्ट फ़ेल होने, पर या और किसी सांघातिक बीमारी में एकाएक मर जाते हैं।

जिन वृद्धों की स्त्रियाँ जिंदा होती हैं, उनकी दशा फिर भी ज़रा शांत रहती है। वासनाएँ भड़कती नहीं, पर विपत्नी वृद्ध पुरुषों के मस्तिष्क में कल्पित वासना एक ऐसा अशांत आंदोलन उत्पन्न करती है, जिससे उनकी निद्रा, क्षुधा और शरीर की नित्यक्रिया में बाधा उपस्थित हो जाती है।

जिन्होंने युवावस्था ही से अपने को जितेंद्रिय बनाया है, जिनके शरीर में यथावत् बल है, वे वृद्धावस्था में अधिक आयु भोगते तथा सुखी रहते हैं। हम प्रथम ही कह आए हैं कि यह बात अभ्यास पर निर्भर है। यदि हम हठ-पूर्वक दृढ़ धारणा से ठीक-ठीक ब्रह्मचर्य का अभ्यास करें, तो यह व्रत जितना कठिन प्रतीत होता है, उतना कठिन अनुभव न हो।

प्राचीन काल में अधेड़ अवस्था के स्त्री-पुरुषों को जहाँ वन में निवास करके वानप्रस्थाश्रम में स्थित होकर मनन और अध्ययन करते हुए संयम का अभ्यास करने का विधान था, वहाँ वृद्धावस्था में संन्यासी होने का भी नियम था। यद्यपि यह नियम अति प्राचीन नहीं है। अति प्रचीन काल में तो मनुष्य बचपन से युवा और युवावस्था से वृद्धावस्था तक तपस्वी-जीवन व्यतीत करते, आडंबर-रहित हो वनों में रहते और समस्त जीवन विलास त्यागकर व्यतीत करते थे। इसके बाद जब नागरिकता की वृद्धि हुई, तब संन्यास-व्रत लेने की परिपाटी चली। संन्यास के नियम बड़े कठोर थे, उसे बराबर पर्यटन करना पड़ता था। हम संन्यास के नियम प्रचीन ग्रंथों के आधार पर लिखते हैं—

जब सब कामनाएँ जीत ले, उनकी इच्छा न रहे, पवित्रात्मा, पवित्रांतःकरण और मननशील हो जाय, तभी गृहस्थाश्रम से निकलकर संन्यासाश्रम में प्रवेश करे।

वह संन्यासी न अग्निहोत्र करे, न अपना कहीं घर बनावे। अन्न-वस्त्र के लिये ग्राम में जाय, बुरे मनुष्यों से दूर रहे, स्थिर-बुद्धि, मननशील हो परमेश्वर में अपनी भावना का समाधान करता हुआ विचरण करे।

न तो अपने जीवन में आनंद और न अपनी मृत्यु में दुःख माने, किंतु जैसे क्षुद्र भृत्य अपने स्वामी की आज्ञा की बाट देखता है, वैसे ही काल और मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहे।

चलते समय आगे-आगे पैर धरे, सदा वस्त्र से छानकर जल पीवे, सबसे सत्य बोले, जो कुछ व्यवहार करे, वह सब मन की पवित्रता से प्रेरित होकर करे।

इस संसार में आत्मनिष्ठा में स्थित, सर्वथा इच्छा-रहित, मांस-मद्यादि का त्यागी, आत्मा के सहाय से ही सुखार्थी होकर विचरा करे, और सबको सदुपदेश देता रहे।

सब सिर के बाल, डाढ़ी-मूछ और नखों को समय-समय पर छेदन कराता रहे। पात्री, दंडी और कुसुंभी रंग के रँगे वस्त्रों को धारण करे।

सब प्राणियों को पीड़ा न देता हुआ दृढ़ात्मा होकर नित्य विचरा करे। जो संन्यासी बुरे कामों से इंद्रियों का निरोध, राग-द्वेषादि दोषों का क्षय, निर्वैरता और सब प्राणियों का

कल्याण करता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है। यदि संन्यासी को मूर्ख संसारी निंदा आदि से दूषित या अपमानित भी करें, तथापि वह धर्म ही का आचरण करे। ऐसे ही अन्य ब्रह्मचर्याश्रमादि के मनुष्यों को भी करना उचित है। सब प्राणियों में पक्षपात-रहित होकर समबुद्धि रक्खे। उपर्युक्त उत्तम कार्य करने ही के लिये संन्यासाश्रम की विधि है। केवल दंडादि चिह्न धारण करना ही धर्म का कारण नहीं। संन्यासी विधिवत् योगशास्त्र की रीति से सात व्याहृतियों के पूर्व सात प्रणव लगाके उसे मन से जपे, और तीन प्राणायाम करे। जैसे अग्नि में तपाने से धातुओं के मल छूट जाते हैं, वैसे ही प्राण के निग्रह से इंद्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं। इसलिये संन्यासी प्राणायामों से दोषों को, धारणाओं से अंतःकरण के मैल को, प्रत्याहार से संगति के दोष को और ध्यान से अविद्या तथा पक्षपात आदि अनी-श्वरता के दोषों को छुड़ाकर पक्षपात-रहित आदि ईश्वर के गुणों को धारण कर सब दोषों को नाश कर दे। जो संन्यासी यथार्थ ज्ञान वा षड्दर्शनों से संयुक्त है, वह दुष्ट कर्मों से बद्ध नहीं होता। जो ज्ञान, विद्या, योगाभ्यास, सत्संग, धर्मानुष्ठान वा षड्दर्शनों से रहित विज्ञान-हीन होकर संन्यास लेता है, वह संन्यास-पदवी और मोक्ष को न प्राप्त होकर जन्म-मरण रूप संसार को प्राप्त होता है। ऐसे मूर्ख अधर्मी का संन्यास लेना व्यर्थ और धिक्कार के योग्य है।

जब संन्यासी सब पदार्थों में अपने भाव से निःस्पृह होता है, तभी यह लोक, यह जन्म और मरण पाकर परलोक और मुक्ति में परमात्मा को प्राप्त होकर निरंतर सुख को प्राप्त होता है। इस प्रकार धीरे-धीरे सब संगति के दोषों को त्यागकर सब हर्ष-शोकादि द्वंद्वों से विशेषकर निर्मुक्त होकर विद्वान् संन्यासी ब्रह्म ही में स्थिर होता है।

उपर्युक्त नियम मनु ने लिखे हैं। अन्य ग्रंथों में भी इसकी चर्चा है, परंतु इस संन्यासाश्रम का विधान आजकल बहुत बिगड़ गया है। अनधिकारी मुसटंडे भिखारी बहुत हो गए हैं, और सच्चे संन्यासियों की कमी हो गई है। आर्य-समाज ने प्राचीन परिपाटी पर ब्रह्मचारी और संन्यासी बनाने प्रारंभ किए हैं, पर चाहे भी जो हो, यह नियम सार्वजनिक नहीं हो सकता है।

आवश्यकता इन बातों की है कि वृद्धावस्था में—

१—सब इंद्रिय-विषयों से उदासीन रहे।

२—जितात्मा हो।

३—मानसिक विकारों से रहित हो।

४—उसमें भूत-दया हो।

इन कार्यों के लिये भेष बदलने या घर त्यागने की आवश्यकता नहीं है। फिर युग-धर्म का मनुष्यों के जीवन पर खास प्रभाव रहना चाहिए। आज आत्मचिंतन या मुक्ति की कामना करके वन में जाकर मृत्यु प्राप्त करना उतना सुंदर

नहीं। आज देश को सच्चे, गंभीर, विश्वासी बुजुर्गों की बड़ी आवश्यकता है। यदि हम मोतीलाल नेहरू, मालवीय, गांधी आदि पुरुषों को संन्यासी कहें, तो अत्युक्ति नहीं। क्या इन लोगों ने अपना सर्वस्व ही देश को नहीं दे दिया? ये निर्वैर, निर्विकल्प और परमत्यागी पुरुष राष्ट्र के लिये कैसा बलिदान कर रहे हैं।

ब्रह्मचर्य का यथार्थ अर्थ तो ब्रह्म का चरण करना है, जैसा हम प्रथम अध्याय में बता चुके हैं। उसकी भित्ति त्याग और तप पर है। वही त्याग और तप जो कर रहे हैं, वे ही, सभी अवस्थाओं में, ब्रह्मचर्य-पद के योग्य हैं, उनकी बाहरी वेश-भूषा चाहे जो हो।

इसलिये वृद्धावस्था में जो पुरुष पवित्र, शांत और नीरोग जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे इन नियमों का पालन करें, और ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा करें।

१—घर-बार, काम-धंधा, धन-पुत्र, पुत्री-स्त्री, बांधव, सबसे संबंध शिथिल करें।

२—जगत् के दुःखों पर करुण भाव से दृष्टि करें। उसके दुःखों को आत्मा में अनुभव करें, और उन्हें दूर करने में तन-मन से संलग्न हो जायँ।

३—स्वार्थों के लिये सभी प्रकार की चेष्टाओं को त्याग दें। सब प्रकार की दुर्भावनाओं, राग-द्वेषों और प्रपंचों को छोड़ दें। शांत, शिष्ट, गंभीर और मननशील रहें।

४—लोक-सेवा और अध्ययन तथा व्यायाम या स्वास्थ्य-संबंधी विषय, केवल इन्हीं बातों का नित्य ध्यान करें।

५—भूमि या तख्त पर शयन करें, शीतकाल में गदेलों की अपेक्षा कंबलों से काम लें। रात्रि के पिछले पहर में नींद त्याग दें। अल्पाहार करें। प्रसन्न रहें। क्रोध और दुःख से दूर रहें। सभी प्रकार के शरीर-कष्टों को सहन करने का अभ्यास करें।

६—मान और अपमान की भावना त्याग दें। यश की इच्छा भी त्याग दें। किसी का मोह न कर सत्य और स्थिर बात कहें, वही करें। मन में कोई विषय गुप्त न रक्खें। सबसे सरलता से व्यवहार करें।

७—सत्योपदेश से निकट आनेवालों के मनों को शुद्ध बनावें। विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करें।

८—प्राणायाम और योग के साधारण नियमों को विचारें, मनन करें और अभ्यास करें।

इस प्रकार नियमों का पालन करने से मनुष्य वृद्धावस्था में जितेंद्रिय, सुखी और आनंदित रह सकते हैं।

तेरहवाँ अध्याय

विशिष्ट ब्रह्मचर्य

जिस प्रकार का ब्रह्मचर्य भीष्मपितामह, लक्ष्मण यति, हनुमान, शंकर, ब्रह्मवादिनी गार्गी एवं स्वामी दयानंद ने साधन किया है, वह विशिष्ट ब्रह्मचर्य की श्रेणी का है। यह बहुत कुछ संभव है कि ऐसे और भी बहुत-से अप्रसिद्ध पुरुष हो गए हों, जिन्होंने इस प्रकार ब्रह्मचर्य सेवन किया हो। यह विधान अतिशय क्लिष्ट और असाधारण है, फिर भी ऐसा नहीं, जिसे मनुष्य न कर सके, या जो मनुष्य की श्रेणी से दूर हो।

हम यह देखते हैं कि लोग पशुओं को बलात् उनका वीर्य स्खलित न होने देने के लिये, जिससे उनका बल क्षय न हो, उनके वीर्य-कोष नष्ट कर देते हैं। घोड़ों, कुत्तों, बैलों और दूसरे पशुओं के साथ बहुधा यह रीति काम में लाई जाती है, और वे बलिष्ठ, दीर्घजीवी, कष्टसहिष्णु एवं काम के बन जाते हैं।

मुग़लों के ज़माने में शाही ज़नानख़ानों में सेवा करने के लिये जो खोजे बनाए जाते थे, उनके भी वीर्य-कोष नष्ट कर दिए जाते थे, जिससे वे आजन्म स्त्री-सहवास के अयोग्य हो जाते थे।

परंतु ये उदाहरण इस अध्याय के लिये आदर्श नहीं। इस अध्याय के लिये तो उन्हीं महापुरुषों के चरित्र आदर्श रूप हैं, जिनका ज़िक्र ऊपर सबसे प्रथम किया जा चुका है।

ये वे पुरुष हैं, जिन्होंने अपनी प्रबल मानसिक शक्ति से हठ-पूर्वक आजन्म काम-संबंधी विचारों को मस्तिष्क से दूर रक्खा, और बाल-काल से यौवन और यौवन से वृद्धावस्था तक पवित्र जीवन व्यतीत कर दिया।

आज हिंदू-घरों में विधवाओं के अनगिनत जीवन ऐसे ही होंगे। हम जानते हैं, ऐसी विधवाओं ने, जब कभी उनके शील पर आक्रमण हुआ है, जान दे दी है, पर दुरभिसंधि में पतित नहीं हुई। इसमें कोई संदेह नहीं कि बहुत-सी स्त्रियाँ मन-वचन-कर्म से आजन्म ब्रह्मचारिणी होंगी।

हम यह स्वीकार करते हैं कि इस प्रकार का ब्रह्मचर्य पालन करने के लिये एक विशेष प्रकार के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा की आवश्यकता है। ऐसे महापुरुषों की सस्कृत आत्मा और उनकी शरीर-रचना ही ख़ास होती है। यह बिलकुल सत्य है कि जिस देश में ऐसे पुरुष पैदा होते हैं, वह देश धन्य है।

योरप में स्त्री-पुरुष बहुधा अविवाहित रहना पसंद करते हैं, पर सच पूछिए, तो इस अविवाहित जीवन में ब्रह्मचर्य की पुट नहीं, प्रत्युत स्वच्छंद व्यभिचार की पुट है।

प्राचीन काल में योरप में कुछ मठों की सृष्टि हुई थी, जिनमें

स्त्री-पुरुष हठात् ब्रह्मचर्य-व्रत में रक्खे जाते थे। यहाँ तक यह नियम कठोरता से काम में लाया जाता था कि यदि किसी स्त्री-मठ में पुरुष पाया जाता था, तो उसकी सज़ा मौत थी।

बुद्ध भगवान् स्वयं एक महा साहसी चरित्रवान् पुरुष थे, जिन्होंने भरी जवानी में उत्कट त्याग किया, परंतु बौद्ध-धर्म में स्त्री-पुरुषों को बलात् जिस प्रकार ब्रह्मचर्य में दीक्षित किया गया, वह नियम सफल न हुआ।

वास्तव में यह सर्वसाधारण का नियम नहीं। यदि कोई युवक या युवती इस व्रत का पालन किया चाहे, तो उसे कठोर नियमों का पालन करना होगा। हम उन नियमों का यहाँ उल्लेख करते हैं—

१—प्रथम अध्याय में जो ब्रह्मचारी के लिये पालन करने के नियम लिखे हैं, उनका आजन्म पालन करना चाहिए। परिस्थिति के कारण बाहरी वेष-भूषा में कुछ परिवर्तन किया जा सकता है, परंतु आहार-विहार का भीतरी नियम उसी प्रकार रहना चाहिए।

२—सायं-प्रातः प्रतिदिन बिला नाग़ा २-२ घंटे व्यायाम करना चाहिए। व्यायाम से शरीर को भली भाँति थका देना चाहिए। ब्रह्मचारी के लिये क्या-क्या व्यायाम करने होंगे, यह हम अगले अध्याय में लिखेंगे।

३—ऐसे पुरुष को किसी लौकिक कार्य या व्यवसाय न करना चाहिए। परमार्थ और समाज-सेवा में ही संलग्न रहना चाहिए।

बिना किसी भाँति के जाति-भेद के प्राणी-मात्र की सेवा करना चाहिए। लोक-हित के लिये अपने देश, समाज, कुटुंब और शरीर तक को त्याग देने के लिये तैयार रहना चाहिए। प्राण तथा शरीर दोनों की ममता त्यागकर सदैव प्रसन्न रहना चाहिए। लोक-सेवा के लिये प्राण और शरीर त्यागने को सदैव प्रसन्नता से तैयार रहना चाहिए। सारे संसार को—प्राणी-मात्र को—अपना कुटुंब समझना और उस पर अकपट प्रेम रखना चाहिए। मैं लोगों को उपकार करता हूँ, लोगों पर दया करके उनका दुख मिटाता हूँ, यह भाव भी त्याग देना चाहिए, मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ, यही समझना चाहिए। इस प्रकार धीरे-धीरे आत्मविकास प्राप्त करना चाहिए।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिनः।

(गीता)

अर्थात् जो सब भूतों (प्राणियों) में अपने को और अपने में सब भूतों को रमा समझता है, वह योगी समदर्शी बन जाता है। ऐसे महापुरुषों को सेवक, सेवा और सेव्य एक ही समझने चाहिए। उसे जानना चाहिए कि मैं अपनी ही सेवा कर रहा हूँ, किसी ग़ैर की नहीं।

४—ऐसे पुरुष-स्त्रियों को व्यक्तिगत रूप से जो आत्मीय जनों के प्रति विशेष उत्तरदायित्व हैं, उसे सीमित करना चाहिए। जैसे—

(१) माता-पिता के प्रति—माता-पिता का संबंध केवल स्थूल शरीर से है, अतः मातृ-पितृ-भक्ति में इतनी आसक्ति नहीं होनी चाहिए, जिससे आत्मोन्नति में बाधा पहुँचे।

(२) गुरुजन के प्रति—ज्ञान-दाता तथा श्रेष्ठ आचारीगण गुरुजन होते हैं। सच्ची गुरु-भक्ति ज्ञान का सदुपयोग ही है। उनका अप्रिय कोई कार्य नहीं करना।

(३) पति-पत्नी—यह विशिष्ट परिस्थिति है। यदि ऐसे स्त्री या पुरुष पति या पत्नी को पूर्व ग्रहण कर चुके हों, तो उनमें शरीर-संबंध न होकर आत्मा का संबंध हो। दोनो दोनो की कल्याण-कामना करें, और दोनो दोनो के प्रिय आचरण करें।

(४) स्वामी के प्रति—उसके प्रति आदर-भाव रखना, सदैव उसकी शुभ-चिंतना करना और उसे सदैव शुभ परामर्श देना।

(५) संतान और अधीनवर्ग—उनके दुःख-सुखों को समझना और सदैव उन्हें सन्मार्ग पर चलाना।

(६) मित्रों के प्रति—उन्हें सदैव ही कर्तव्य का स्मरण कराते रहना और उन्हें प्रमादी न बनने देना।

(७) अन्य परिचितों के प्रति—पवित्र करुणा-भाव रखना। सबको सब भाँति क्षमा करना।

(८) शत्रुओं के प्रति—स्नेह और सहनशीलता से रहना।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः ;
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ;
सर्वारम्भः परित्यागी गुणातीतः स उच्यते ।

(गीता)

सुख-दुःख में समान रहे, मिट्टी और सोने को समान समझे। प्रिय और अप्रिय में भेद न जाने, निंदा और स्तुति में समान हो। मानापमान और मित्र-शत्रु में भेद न जाने, जो सब स्वार्थों को त्याग दे, वह धीर पुरुष गुणातीत हो सकता है।

चौदहवाँ अध्याय

ऊर्ध्वरेत-प्रक्रिया

ऊर्ध्वरेता का अर्थ है वीर्य को ऊपर आकर्षण करके मस्तिष्क में स्थिर कर लेना। यह क्रिया अतिशय दुर्धर्ष है। और योग-शास्त्र के अभ्यास विना इसका करना लगभग असंभव-सा है। पर फिर भी इसके संबंध में हम कुछ आवश्यक बातें लिखेंगे।

स्मरण रखने की बात है कि वीर्य शरीर-भर में इस प्रकार रमा हुआ है, जैसे तिल में तेल। यह वीर्य विचारों की उष्णता पाकर अपान वायु के अधीन होकर अधोगति को प्राप्त होता है, और तब इसका स्खलन होता है। यह स्वाभाविक बात है कि वीर्य-संबंधी चिंतना शरीर में उत्पन्न होते ही वीर्य का अधःस्राव होने लगता है। यदि ब्रह्मचारी तनिक भी असावधान हो, तो खान-पान के ही दोष से वीर्य अनिच्छा-पूर्वक स्वप्न में या मूत्र के संसर्ग से बाहर निकल जाता है।

परंतु जो ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी होता है, उसका वीर्य अपान वायु की संचालिनी शक्ति से विमुक्त होकर परिपक्व होने पर प्रथम ओज होता और फिर मस्तिष्क में रम जाता है। ऐसे पुरुष का वीर्य स्त्री-प्रसंग में भी स्खलित नहीं होता। प्राण वायु

के नियमन से यह शक्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे पुरुष वीर्य-नली द्वारा मूत्रेंद्रिय-मार्ग से स्त्री का ओज अपने शरीर में आकर्षित कर लेते हैं। और उन्हें वीर्य-पात की अपेक्षा अतिशय गंभीर आनंद प्राप्त होता है।

योगी लोग प्रथम मूत्रेंद्रिय द्वारा वायु खींचकर फिर जल, दूध और पारा खींचकर मूत्रेंद्रिय से प्रश्वास लेने का अभ्यास करते हैं। वे प्राणायाम की विधि से पाँचो वायुओं को ठीक-ठीक नियमित कर सकते हैं। ऊर्ध्वरेता का शरीर वज्र की भाँति हो जाता है, और शीत-उष्णता तथा रोग-विष उस पर प्रभाव नहीं कर सकते। मृत्यु और जीवन भी उसकी इच्छा के अधीन होते हैं।

ऊर्ध्वरेतन क्रिया में सर्वप्रथम क्रिया प्राणायाम की है। इस क्रिया की साधारण बातें हम यहाँ पर लिखते हैं—

प्राणायाम-विधान—जैसे अग्नि में धातु डाल देने से वह निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार प्राणायाम से सब इंद्रियों के दोष भस्म हो जाते हैं।

प्राणायाम का स्थूल प्रभाव यह होना चाहिए कि मस्तिष्क के साथ हृदय का एकीकरण हो जाय। प्राण वायु वास्तव में हृदय को प्रीणन करती है, और वह हृदय ही में रहती है। हृदय ही प्राण का स्थान है, उसी प्राण वायु को अभ्यास से मस्तिष्क में व्याप्त कर देना, यही प्राणायाम की सीमा है।

मस्तिष्क में सहस्मार-चक्र है, और इसके नीचे पृष्ठ-वंश के

साथ कई चक्र हैं। प्राणायाम द्वारा नीचे से एक-एक चक्र में प्राण भरने की क्रिया साध्य होती है। और सबके अंत में इस मस्तिष्क के सहस्मार-चक्र में प्राण भेजा जाता है। इस अवस्था से पूर्व पृष्ठ-वंश की नाड़ियों में प्राण का उत्तम संचार होता है। तत्पश्चात् मस्तिष्क के सहस्मार-चक्र में प्राण पहुँचता है, और ब्रह्मरंध्र तक पहुँचकर उसी में स्थित हो जाता है। यह प्राण की सर्वोत्तम गति है। इस स्थान में ब्रह्म के साथ प्राण का संसर्ग होने से सर्वश्रेष्ठ अवस्था प्राप्त हो जाती है।

मस्तिष्क में दिव्य विचारों की जो धारा वहन होती रहती है—वे प्राण के वहाँ प्राप्त होने पर ही उसका भोजन करते हैं, और पुष्ट होते हैं। हृदय रक्त का कुंड है, वह सारे शरीर को स्वच्छ और ताजा रक्त देता है। वही रक्त अमृत है, उसी से शरीर आप्यायित होता और इंद्रियों की परितृप्ति होती है।

जब प्राणायाम से चित्त की एकाग्रता होती है, तब कई अज्ञात शक्तियों का विकास होता है, उसी अवस्था में आंतरिक उपकरणों का विकास भी होता है। इसी रीति से हृदय आदि अंतरंगों का पूर्ण ज्ञान होने के पश्चात् वहाँ अपने आत्मा की शक्ति कैसी अद्भुत रीति से कार्य कर रही है, इसका साक्षात्कार होता है। इस प्रकार अपने आत्मा की शक्ति विदित होते ही उक्त फल प्राप्त होता है।

जब इस प्रकार प्राणायाम सफल हो जाता है, तब पुरुष

अकाल मृत्यु से नहीं मरता, पूर्ण आयुष्य की समाप्ति के पश्चात् स्वकीय इच्छा से ही मरता है। आयुष्य को समाप्ति तक उसके पूर्ण अंग, अवयव और इंद्रिय बलवान् तथा कार्य-क्षम बने रहते हैं। प्राणों की विशेषता इस प्रकार है—

१—आंतरिक प्राण का बाह्य वायु के साथ नित्य संबंध है।

२—जितना प्राण होता है, उतनी ही आयु होती है, इसलिये प्राण-शक्ति की वृद्धि करने से आयु की वृद्धि होती है।

३—प्राण-रक्षण-नियमों के अनुकूल आचरण करने से न केवल प्राणों का बल बढ़ता है, प्रत्युत चक्षु आदि सभी इंद्रियों, अवयवों और अंगों की शक्ति बढ़ती और उत्तम आरोग्य प्राप्त होता है।

४—प्राणायाम के साथ मन में शुभ विचारों की धारणा धरने से बड़ा लाभ होता है।

५—सूर्य-प्रकाश का सेवन तथा भोजन में घी का सेवन करने से प्राणायाम शीघ्र सिद्ध होता है।

६—प्राण का वीर्य के साथ संबंध है। वीर्य-रक्षण से प्राण की शक्ति वृद्धि होती है, और प्राणायाम से वीर्य की स्थिरता होती है।

७—प्राण-संवर्धन के नियमों के विरुद्ध व्यवहार करने से शक्ति क्षीण होकर अकाल मृत्यु होती है।

८—प्राण जीवन-तत्त्व का अधिष्ठाता है।

प्राणायाम तीन प्रकार का है—१. पूरक, २. कुंभक और ३. रेचक।

पूरक—नाक के दाहने छिद्र को दाहने हाथ के अँगूठे से दबाकर बाएँ छिद्र से धीरे-धीरे पेट में वायु भरना।

कुंभक—फिर बाएँ छिद्र को भी बंद करके पेट की भरी वायु का निरोध करना।

रेचक—नाक के बाएँ छिद्र से बल-पूर्वक वायु को फेंक देना। इस प्रकार छ बार प्रारंभ में करना। तीन सवेरे, तीन शाम को। इस काम के लिये दुर्गंध-रहित शुद्ध स्थान होना चाहिए। सिद्धासन से समथल भूमि में बैठ जाना चाहिए। और जब-जब प्राण वायु को खींचे, तब-तब गुदा-द्वार और उपस्थ भी खींचना चाहिए।

यदि प्राणायाम ठीक-ठीक सिद्ध हो जाय, तो फिर मूत्र-मार्ग से वायु, जल, दूध और पारद को खींचने का अभ्यास करना चाहिए।

यह अभ्यास करने के समय लघु आहार करना और शांत तथा मन-वचन-कर्म से जितेंद्रिय रहना चाहिए। यदि चित्त में चंचलता हो, और चित्त स्थिर न हो, तो यह क्रिया करनी चाहिए—

पद्मासन से सीधा बैठना, अचल रहना, और दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर ठहराना।

अभ्यास करने से ज्यों-ज्यों यह क्रिया सिद्ध होगी, चित्त की चंचलता नष्ट होगी।

ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचर्य-साधकों को इन नियमों का भी पालन करना चाहिए—

१—स्वल्पाहार करें। कभी ठूँस-ठूँसकर न खायँ। सुपाच्य, ताजा और परिमित भोजन खायँ। दूध, भात, फल आदि।

गीता में लिखा है—

> आयुः सत्त्वबलारोग्यं सुखप्रीतिविवर्द्धनाः ;
> रस्याः स्निग्धाःस्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः।

रस्य, स्निग्ध, नियमित, हृद्य और सात्त्विक आहार आयु, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ानेवाला है।

फलाहार अति सात्त्विक है। इनमें फुजला बहुत कम और पोषक तत्त्व विशेष होता है।

दूध—खासकर धारोष्ण दूध अति हितकारी है।

२—एकांत वास या सत्संग करें, जिससे चित्त की चंचलता नष्ट हो और ज्ञान का उदय हो।

३—मनन करें—पूर्व अध्ययन का तथा नवीन अध्ययन का सिलसिला बराबर जारी रक्खें।

पंद्रहवाँ अध्याय

अनिच्छा-पूर्वक ब्रह्मचर्य-भंग करनेवाले रोग और उनके उपचार

हम यह बता आए हैं कि वीर्य अधोगमनशील है। जब वह स्वभावतः परिपक्व हो जाता है, तब तनिक-से भी विचारों से उत्तेजित होकर नीचे बहने लगता है। वह च्युत वीर्य यदि नैसर्गिक कारण नहीं पाता, तो स्वप्न में या मूत्र के साथ गिर जाता है। इस प्रकार अनिच्छा से ब्रह्मचर्य-भंग करनेवाले रोग ये हैं—

१—बद्धकोष्ठ या क़ब्ज़ियत।

२—निद्रा-नाश।

३—स्वप्न-दोष।

४—मूत्र-प्रमेह।

बद्धकोष्ठ—यह उन्हीं लोगों को होता है, जो बचपन से अनियमित खान-पान करते हैं। जिनके खाने और शौच जाने का कोई ठिकाना नहीं। ऐसे लोगों के मूत्र में प्रथम एल्ब्यूमेन आता है, और तब वीर्य आगे-पीछे ज़ोर के साथ आने लगता है।

इसके लिये ये उपचार करने चाहिए—

१—भोजन के साथ दूध का सेवन करो।

२—पत्तों की साग-सब्जी ज्यादा खाओ, रोटी मोटी खाओ।

३—मुनक्का या अंजीर खाओ।

४—सप्ताह में एक बार त्रिफला की ४ माशे गर्म पानी से रात्रि में फंकी लो।

५—भोजन की मात्रा और समय नियत कर लो।

६—भारी और बासी भोजन न करो।

निद्रा-नाश—यह मानसिक रोग है। यदि दुश्चिंताएँ मन में वास कर जाती हैं, तो निद्रा-नाश हो जाता है। कब्ज और मूत्राशय की गड़बड़ी से भी निद्रा-नाश होता है। निद्रा-नाश से बद्ध-कोष्ठ होकर मूत्र के साथ वीर्य-स्राव होने लगता है, इसका उपाय यह करो—

१—दिन में मत सोओ।

२—सोने से पूर्व गर्म पानी में १० मिनट पैर भिगो लो। फिर सुखा लो।

३—हल्का भोजन करो। सोने से ३ घंटे पूर्व।

४—दुश्चिंताओं को नाश करो, और कोई उत्तम ग्रंथ पढ़ो।

५—पूर्व-पश्चिम सोओ।

६—सोने से पूर्व एक प्याला गर्म पानी जरा-सा नीबू निचोड़ कर पियो।

७—यदि लाभ न हो, तो यह दवा बनाकर खाओ—मुरब्बा आँवला १ छ०, किशमिश १ छ०, बादामगिरी १ छ०

तीनों को पीसकर चटनी बना लो। इसमें १ तोला वंशलोचन तथा ६ माशे छोटी इलायची डाल दो। मात्रा २ तोला दूध के साथ।

स्वप्न-दोष

१—यदि स्वप्न-दोष निद्रा-नाश या क़ब्ज़ी के कारण है, तो उपर्युक्त कारण दूर होने पर स्वयं मिट जायगा।

२—यदि वह बुरे विचारों के कारण है, तो उन्हें दूर करो।

३—यदि मूत्राशय की उष्णता से है, तो यह दवा खाओ।

ब्राह्मी-चूर्ण १ तोला, शीतल चीनी १ तोला, कपूर ३ माशे। कपड़छान कर लो। मात्रा ४ रत्ती। सोने के समय ताज़ा पानी से लो, जब तक स्वप्न-दोष दूर न हो जाय। पेशाब को कदापि मत रोको।

मूत्र-प्रमेह

१—त्रिफला १॥ तोला, हल्दी ६ माशे। रात्रि को भिगो दो, सुबह मल-छान शहद मिलाकर खाओ।

२—चंद्रप्रभा-गुटिका सेवन करो।

उत्तम हो कि किसी योग्य चिकित्सक से सम्मति लो।

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्मचर्य-संबंधी व्यायाम

हम कुछ व्यायामों का ज़िक्र पीछे कर आए हैं। वे व्यायाम प्रत्येक ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन करनेवाले स्त्री-पुरुष को लाभदायक हैं। इसके सिवा सिर्फ़ पुरुषों के लिये हम कुछ व्यायाम लिखते हैं—

१. कुश्ती—यह क्रिया प्रातःकाल करनी चाहिए। इससे समस्त शरीर को व्यायाम मिलता है, और शरीर का प्रत्येक अवयव थकता है, पसीना भी यथेष्ट निकलता। है मांस-पेशियाँ विचलित होती हैं, और रुधिराभिसरण ठीक होता है।

२. दंड-बैठक—बैठक करने से पूर्व लँगोट कस लेना उत्तम है। दंड का अभ्यास करना ज़रा सावधानी से होना चाहिए। यदि दंड करने से मस्तिष्क में रक्त जमा हो जाय, और उससे निद्रा-नाश होने का भय हो, तो वह त्याग देना चाहिए।

३. दौड़—सबसे उत्तम व्यायाम है। जितना अधिक दौड़ा जाय, उत्तम है। दौड़ने का समय ग्रीष्म-ऋतु में प्रातःकाल तथा शीत-ऋतु में अपराह्न काल है।

४. तैरना या नौका चलाना—यह भी उत्तम व्यायाम है। ये दोनो ही व्यायाम उत्तम रीति से प्राणों को वशीभूत करते हैं।

प्रत्येक ब्रह्मचारी को रात्रि को सोने से पूर्व यह क्रिया करनी चाहिए--

भूमि पर चटाई या मृग-चर्म बिछाकर बैठो। पेट भरा न हो। भोजन किए दो-तीन घंटे व्यतीत हो चुके हों। मूत्रादि त्यागकर बैठना उचित है। बाएँ पैर की एड़ी गुदा और इंद्रिय के बीच में और दाएँ पैर की एड़ी पैर पर इंद्रिय के ऊपर रखनी चाहिए। सिर को सीधे, ठोड़ी को झुकाकर तथा आँखों को सामने करके बिना कमर झुकाए बैठ जाओ। स्थिर होकर बैठो। आत्मचिंतन करो। धीरे-धीरे प्राणायाम करो। यह क्रिया आध घंटे करो। यदि चित्त में काम-विकार हो, तो तनिक अधिक देर तक करो।

५. शीर्षासन—यह आसन ब्रह्मचर्य-पालन के लिये सहायक हो सकता है, पर इसके अभ्यास में दो बातों का ध्यान रखना चाहिए। एक तो यह कि जब तक शीर्षासन किया जाय, खान-पान आदि में असावधानी न होना चाहिए। दूसरे, निर्बल और रोगी व्यक्ति को इसका अभ्यास न करना चाहिए। यह आसन १५ मिनट से अधिक काल तक न करना चाहिए।

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मचर्य-संबंधी सदुपदेश

१—प्रतिज्ञा करो कि मैं अवश्य ब्रह्मचर्य-साधन करूँगा। मैं इसमें सफल होऊँगा। यह मेरे लिये कठिन नहीं है। मैं कदापि इंद्रियों की अधीनता नहीं स्वीकार करूँगा। मैं अपने मन और शरीर पर अधिकार रक्खूँगा।

२—अभ्यास करो, और विफल होने पर कदापि लज्जित मत हो।

३—जीवन, धन, यौवन क्षण-भर के लिये हैं, इस पर गर्व करो, इनका दुरुपयोग न करो।

४—श्रद्धा रक्खो, तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी।

५—विश्वास करो कि तुम आदर्श ब्रह्मचारी बनकर रहोगे।

६—संसार की स्त्रियाँ तुम्हारे लिये बहनें, पुत्रियाँ और माताएँ हैं।

७—सर्व-शक्तिमान् ईश्वर सदैव ही दुर्गुणों से तुम्हें रक्षित रक्खे।

८—वीर्यवान् ही विद्वान् हो सकता है।

९—ब्रह्मचर्य जीवन है, और वीर्य-नाश मौत।

१०—मैं वीर्य का अनमोल मोती नष्ट न करूँगा। इनके सिवा इन दश नियमों का भी पालन करो—

१—प्रातःकाल भ्रमण।

२—गहरे श्वास लेना।

३—नियमित आहार-विहार।

४—शरीर-शुद्धि।

५—प्रसन्न मन।

६—निष्पाप वृत्ति।

७—साधारण परिच्छद।

८—सादा जीवन।

९—यथेष्ट परिश्रम।

१०—सत्संग।

अठारहवाँ अध्याय

सूक्ति-संचय

"यह संसार मातृमय है। फिर कुभावना के लिये स्थान कहाँ? तब ब्रह्मचर्य-पालन में कठिनाई क्या है?"

—श्रीरामकृष्ण परमहंस

"अविवाहित जीवन से परमात्मा प्यार करता है। संयम और पवित्रता से रहना स्वर्गीय आदेश है।"

—मसीह

"मनुष्य को अपना जीवन निष्पाप तथा उच्च सदाचार-युक्त बनाना चाहिए।"

—सुक़रात

"वही देश सौभाग्यवान् होता है, जिसमें ब्रह्मचर्य, वेदोक्त धर्म और विद्या का प्रचार होता है।"

—दयानंद सरस्वती

ब्रह्मचर्य की अखंडता से सहज ही परमात्मदर्शन होता है।"

—शंकराचार्य

हमें ऐसे ब्रह्मचारी मनुष्य चाहिए, जिनके शरीर की नसें लोहे की भाँति और स्नायु ईस्पात की भाँति दृढ़ हों। उनकी देह में

ऐसा मन हो, जिसका संगठन वज्र से हुआ हो। हमें चाहिए पराक्रम, मनुष्यत्व, क्षात्र, वीर्य और ब्रह्म-तेज ।"

—विवेकानंद

"जैसे दीपक में तेल बत्ती द्वारा ऊपर को चढ़कर प्रकाश के रूप में बदल जाता है, वैसे ही वह शक्ति (वीर्य), जिसका नीचे की ओर बहाव है, यदि ऊपर जाने लगे, तो आत्मतेज का प्रकाश प्रकट हो जायगा।"

—रामतीर्थ

"वीर्य ही से आत्मा को अमरत्व प्राप्त होता है।"

—नित्यानंद

"विद्यार्थियों और युवकों को ब्रह्मचर्य की उपासना करनी चाहिए, क्योंकि बिना बल और बुद्धि के अधिकारों की रक्षा नहीं होती।"

—तिलक

"ब्रह्मचर्य और योग ही सुख का मार्ग है।"

—अरविंद

"बाल ब्रह्मचारी ऋषि दयानंद का जीवन-दृष्टांत हमारे सामने है, जो आदर्श व्यक्तित्व का द्योतक है ।"

—रवींद्र

"मैं चाहता हूँ, हनुमान-जैसों की मूर्तियाँ स्थान-स्थान पर खड़ी की जायँ, और वहाँ लँगोटे के सच्चे ही लोग जायँ।"

—मालवीय

"संसार वीर्यवान् के लिये है ।"

—सत्यदेव

"शास्त्रों के अध्ययन से मुझे शारीरिक उन्नति का सर्वोत्तम उपाय ब्रह्मचर्य सूझ पड़ा है ।"

—राममूर्ति

"मनुष्य-जाति में सुख-शांति स्थपित करने के लिये पुरुष-स्त्री दोनो को संपूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने का उद्योग करना श्रेयस्कर है ।"

—टाल्स्टॉय

"जननेंद्रिय, पाकस्थली और मस्तिष्क तीनो में घनिष्ठ संबंध है। एक के रोगी होने पर दूसरे भी बचते नहीं ।"

—डॉ० जी० एम्० बियर्ड

"वीर्य ही मनुष्य-शरीर का जीवन है ।"

—डॉ० पी० टी० हार्न

"वीर्य तुम्हारी हड्डियों का सत, मस्तिष्क का भोजन, जोड़ों का तेल, श्वास का माधुर्य है । यदि तुम मनुष्य हो, तो उसका एक बिंदु भी नष्ट न करो, जब तक कि पूर्ण ३० वर्ष के न हो जाओ । और तब सिर्फ गर्भाधान करो ।"

—डॉ० मेलवील, कीथ एम्० डी०

गंगा-पुस्तकमाला की स्वास्थ्य और चिकित्सा-संबंधी कुछ उत्कृष्ट पुस्तकें

संक्षिप्त स्वास्थ्य-रक्षा

लेखिका, श्रीमती हेमंतकुमारी भट्टाचार्य ने इसमें स्वास्थ्य-रक्षा के मूल-तत्वों की बड़ी ही सरल भाषा में विवेचना की है। यदि आप चाहते हैं कि आप और आपकी संतान सदैव नीरोग रहे, तो इस पुस्तक को मँगाकर अपने घर रखिए, और इसके अनुसार आचरण करिए। फिर देखिए, आपका स्वास्थ्य कितना सुंदर रहता है। मूल्य ॥=), सजिल्द ॥।)

स्वास्थ्य की कुंजी

(तृतीयावृत्ति)

लेखक, डॉ० बाबूराम गर्ग, एल्० एम्० पी०। हिंदोस्तान बीमारों का देश बनता जा रहा है। ग़रीबी तो जैसी है, सो है ही, बीमारी का दौरदौरा इस देश में ग़ज़ब का है। जिसे देखिए, बीमार। नौजवानों की हालत तो और भी गई-बीती है। बिना स्वास्थ्य-सुधार के भविष्य में—स्वतंत्र भारत के लिये—कोई आशा नहीं रह जाती। स्वास्थ्य-सुधार की इसी कठिन समस्या को सुलझाने के लिये यह 'कुंजी' तैयार कराई गई है। अवश्य पढ़िए। मूल्य १), सजिल्द १॥)

तात्कालिक चिकित्सा

लेखक, श्रीजानबहादुरलाल। मनुष्य की असावधानी तथा नियमों

की अनभिज्ञता के कारण यह मनुष्य-शरीर टूटा-फूटा एवं अस्वस्थ रहता और विनाश को प्राप्त हुआ करता है। फलतः इसे प्रतिक्षण किसी सुयोग्य डॉक्टर अथवा वैद्य की आवश्यकता हुआ करती है। किंतु प्रत्येक स्थान पर और प्रत्येक समय उसकी सहायता प्राप्त करना कठिन होता है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी शरीर-रचना तथा उसके स्वास्थ्य-नियमों का यथोचित ज्ञान रक्खे, ताकि समय-कुसमय, डॉक्टरों अथवा अनुभवी वैद्यों की अनुपस्थिति में भी, वह अपनी, अपने कुटुंबियों की, मित्र-मंडली और अन्य प्राणियों की यथार्थ तात्कालिक चिकित्सा कर सके। यह पुस्तक इसीलिये लिखी गई है। इसकी भाषा सरल है, और चित्रों से इसका आशय समझने में और भी सुगमता हो गई है। इसके लेखक एक अनुभवी बालचर-शिक्षक (Scout Master) और सहृदय देश-भक्त हैं। बालचरों के लिये तो यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी है। साथ ही प्रत्येक छोटे-बड़े गृहस्थ को भी इसकी एक-एक प्रति अपने यहाँ रखकर इससे लाभ उठाना चाहिए। स्थान-स्थान पर लगभग पचास-साठ चित्र भी दे दिए गए हैं। इस कारण पुस्तक का विषय समझने में और भी सरलता हो गई है। इतने चित्रों के रहते हुए भी इस उपयोगी, अत्यावश्यक, महत्त्व-पूर्ण पुस्तक का मूल्य १), सजिल्द १॥)

संक्षिप्त शरीर-विज्ञान

लेखिका, श्रीमती हेमंतकुमारी भट्टाचार्य। संसार में स्वास्थ्य और शरीर की रक्षा से बढ़कर और कुछ भी महत्त्व-पूर्ण नहीं है। स्वास्थ्य-रक्षा ही जीवन का मूल-धन है। स्वास्थ्य बिगड़ जाने से लौकिक सुख दुर्लभ हो जाते हैं। शारीरिक सुख तो स्वास्थ्य-रक्षा ही पर पूर्ण रूप से निर्भर है। जिसका स्वास्थ्य ठीक नहीं, वह सब तरह से संपन्न होकर भी दरिद्र और दुखी है। किंतु शरीर की भीतरी बातें जाने बिना स्वास्थ्य की रक्षा नहीं हो सकती। प्रत्येक अवयव की अंदरूनी हालत

जानने से स्वास्थ्य-रक्षा में बड़ी सुविधा और सुगमता होती है। इस पुस्तक में मानव-शरीर के प्रत्येक अंग की बनावट और उसकी आंतरिक अवस्था का सूक्ष्म विवेचन बड़ी अनुभवशीलता और सरलता से किया गया है। संसार में सुख की इच्छा रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक शास्त्र से परिचित होना चाहिए। यह पुस्तक शारीरिक शास्त्र कासार-गर्भ निचोड़ और सर्वोपयोगी है। मूल्य ॥=), सजिल्द ।॥)

स्त्रियों के व्यायाम

लेखक, पं० गनेशदत्त शर्मा गौड़। बिना स्त्रियों के स्वस्थ हुए हम बीमारों की जाति का उद्धार असंभव है। सदियों से पर्दे के बंधन में रखकर हमने अपनी जिन गृह-देवियों को 'चित्र-लिखे कपि देखि डरातीं' का प्रत्यक्ष उदाहरण बना डाला है। उन्हीं कोमलांगी अबलाओं को सबला और स्वस्थ बनाने के लिये, उन्हें दुष्टों का सामना करने योग्य बनाने के लिये, व्यायाम अत्यंत आवश्यक है। सुंदर, आकर्षक चित्रों द्वारा लगभग ४० व्यायामों का यह सुंदर विवरण अपने ढंग का अनोखा ही है। अवश्य देखिए। मूल्य १), सजिल्द १॥)

प्राणायाम

(चतुर्थावृत्ति)

अनुवादक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए०। यह पुस्तक स्वामी रामचारक-लिखित 'साइंस ऑफ़् ब्रेथ' का हिंदी-रूपांतर है। प्राणा-याम-जैसी कठिन क्रिया बड़ी सरल भाषा में समझाई गई है। साधा-रण-से-साधारण व्यक्ति भी इसे एक बार पढ़कर प्राणायाम का अभ्यास कर सकता है। योगी तथा गृहस्थ सभी इससे लाभ उठा सकते हैं। मूल्य केवल ।॥=), सजिल्द १।=)

किशोरावस्था

(द्वितीयावृत्ति)

लेखक, स्व० गोपालनारायण सेन-सिंह बी० ए०। पुस्तक अपने

ढंग की एक ही है। प्रत्येक पिता को अवश्य मँगाकर पढ़नी और अपने युवक पुत्रों के हाथ में रखनी चाहिए। जिन बुराइयों में पड़कर नवयुवक अपने यौवन-काल का सर्वनाश करते हैं, उन्हीं का इसमें बड़ी मार्मिक भाषा में वर्णन किया गया है। बचपन से जवानी, यौवन-काल का शारीरिक परिवर्तन, शिक्षा और संयम, स्वप्न-दोष और उसका निवारण, युवकों का स्वास्थ्य, युवकों का धार्मिक विचार, बड़ों का कर्तव्य आदि विषयों पर वैज्ञानिक ढंग से लिखा गया है। साथ ही एक 'मदन-दहन'-नामक कहानी भी दी गई है। वह बड़ी ही रोचक और शिक्षा-प्रद है। विषय को सुगम करने के लिये स्थान-स्थान पर चित्र भी दिए गए हैं। मूल्य ॥=), सजिल्द १=)

हठयोग

(द्वितीयावृत्ति)

अनुवादक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंहजी बी० ए०। बाबा रामचारकदास की लिखी हुई, इसी नाम की पुस्तक का हिंदी-अनुवाद। इसमें स्वामीजी के बनाए हुए ऐसे सरल अभ्यास हैं, जिन्हें आप खाते-पीते, उठते-बैठते, चलते-फिरते हर समय कर सकते हैं। थोड़े ही अभ्यास से आपकी शारीरिक उन्नति और मनःशक्ति-प्रबलता उस मात्रा तक पहुँच जायगी, जिसका आपको स्वप्न में भी ख़याल न होगा। पुस्तक को पढ़कर अभ्यास शुरू कीजिए, बड़ा लाभ होगा, कोई बीमारी कभी न उभरेगी, बल्कि हमेशा के लिये दूर हो जायगी। मूल्य १।=), सजिल्द १॥।=)